

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः
पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

आगम-१३

राजप्रश्रिय
आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-१३

४५ आगम वर्गीकरण					
क्रम	आगम का नाम	सूत्र	क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१	२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२	२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३	२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४	२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५	२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६	३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७	३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८	३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९	३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०	३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११	३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१	३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्रिय	उपांगसूत्र-२	३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३	३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४	३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५	३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६	४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७	४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८	४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९	४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०	४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११	४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२	४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतुःशरण	पयन्नासूत्र-१	---	-----	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बुकस	क्रम	साहित्य नाम	बु
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- आगम कथानुयोग	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- आगमसूत्र गुजराती अनुवाद	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- आगमसूत्र सटीक गुजराती अनुवाद	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	तत्त्वाभ्यास साहित्य-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	सूत्राभ्यास साहित्य-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	व्याकरण साहित्य-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	व्याख्यान साहित्य-	04
	-4- आगम चूर्ण साहित्य	[09]	5	जिनलक्ति साहित्य-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	विधि साहित्य-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	आराधना साहित्य	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	परिचय साहित्य-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	पूजन साहित्य-	02
	-1- आगम सहकोसो	[04]	10	तीर्थकर संक्षिप्त दर्शन	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	प्रकीर्ण साहित्य-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	दीपरत्नसागरना लघुशोधनिबंध	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-संगु)	[04]		आगम सिवायनुं साहित्य कुल पुस्तक	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- आगम विषयानुक्रम- (मूल)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

मुनि दीपरत्नसागरनुं साहित्य

1	मुनि दीपरत्नसागरनुं आगम साहित्य [कुल पुस्तक 516] तेना कुल पाना [98,300]
2	मुनि दीपरत्नसागरनुं अन्य साहित्य [कुल पुस्तक 85] तेना कुल पाना [09,270]
3	मुनि दीपरत्नसागर संकलित 'तत्त्वार्थसूत्र'नी विशिष्ट DVD तेना कुल पाना [27,930]

अभारा प्रकाशनो कुल ५०१ + विशिष्ट DVD कुल पाना 1,35,500

[१३] राजप्रश्रिय उपांगसूत्र-२- हिन्दी अनुवाद

[अरिहंतों को नमस्कार हो । सिद्धों को नमस्कार हो । आचार्यों को नमस्कार हो । उपाध्याय को नमस्कार हो । लोक में रहे हुए सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।]

सूत्र - १-४

उस काल और उस समय में आमलकल्या नाम की नगरी थी । वह भवनादि वैभव-विलास से सम्पन्न थी यावत्-मनोहर रूप वाली थी और असाधारण सौन्दर्य वाली थी ।

उस आमलकल्या नगरीके बाहर ईशान दिशा में आम्रशालवन नामक चैत्य था । वह चैत्य बहुत प्राचीन था उस चैत्यवर्ती श्रेष्ठ अशोकवृक्ष और पृथ्वीशिलापट्टक का वर्णन उववाईसूत्र अनुसार जानना ।

उस आमलकल्या नगरी में सेय नामक राजा राज्य करता था । उसकी धारिणी नाम की पटरानी थी । स्वामी-श्रमण भगवान महावीर पधारे । परिषद् नीकली । राजा भी यावत् पर्युपासना करने लगा ।

सूत्र - ५

उस काल उस समय में सूर्याभ नामक देव सौधर्म स्वर्ग में सूर्याभ नामक विमान की सुधर्मा सभा में सूर्याभ सिंहासन पर बैठकर चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा और बहुत से सूर्याभ विमानवासी वैमानिक देवदेवियों सहित अव्याहत निरन्तर नाट्य एवं निपुण पुरुषों द्वारा वादित वीणा हस्तताल, कांस्यताल और अन्यान्य वादित्रों तथा घनमृदंग के साथ दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचर रहा था । उस समय उसने अपने विपुल अवधिज्ञानोपयोग द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को देखा ।

उस समय उसने जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आमलकल्या नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में यथा प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर को देखा । वह हर्षित और अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, उसका चित्त आनंदित हो उठा । प्रीति उत्पन्न हुई, अतीव सौमनस्य को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय फूल गया, नेत्र और मुख विकसित श्रेष्ठ कमल जैसे हो गये । अपार हर्ष के कारण पहने हुए श्रेष्ठ कटक, त्रुटित, केयूर, मुकूट और कुण्डल चंचल हो उठे, वक्षःस्थल हार से चमचमाने लगा, पैरों तक लटकते प्रालंब-झूमके विशेष चंचल हो उठे और उत्सुकता, तीव्र अभिलाषा से प्रेरित हो वह देवश्रेष्ठ सूर्याभ देव शीघ्र ही सिंहासन से उठा । पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा । पादुकार्ये उतारी । एकाशाटिक उत्तरासंग किया । तीर्थकर के अभिमुख सात-आठ डग चला, बायाँ घुटना ऊंचा रखा और दाहिने घुटने को नीचे भूमि पर टेक कर तीन बार मस्तक को पृथ्वी पर नमाया । तत्पश्चात् कटक त्रुटित से स्तंभित दोनों भुजाओं को मिलाया । हाथ जोड़ आवर्त्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उसने इस प्रकार कहा-

अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो, धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ स्थापना करने वाले, स्वयं ही बोध को प्राप्त, पुरुषों में उत्तम, कर्म-शत्रुओं विनाश में पराक्रमी, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल समान, पुरुषों में उत्तम गंधहस्ती समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में विशेष उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, श्रद्धा-ज्ञान-रूप नेत्र के दाता, धर्म मार्ग के दाता, जीवों दया का उपदेशक, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्म उपदेशक, धर्म नायक, धर्म सारथी, चतुर्गति रूप संसार का अंत करने वाले धर्म चक्रवर्ती, अव्याघात केवल-ज्ञान-दर्शन के धारक, छद्म के नाशक, रागादि जीतने वाले, जीतने के लिए अन्य को प्रेरित करने वाले, संसार-सागर से स्वयं तिरि हुए और दूसरों को तिरने का उपदेश देने वाले, स्वयं

कर्म-बंधन से मुक्त और दूसरों को मुक्त करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शिव, कल्याण रूप, अचल को प्राप्त हुए, अरुज, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति-सिद्धि गति नामक स्थान में स्थित भगवंतों को नमस्कार हो ।

धर्म की आदि करनेवाले, तीर्थकर यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रेसर श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार हो । तत्रस्थ बिराजमान भगवान को अत्रस्थ मैं वंदना करता हूँ । वहाँ पर रहे हुए वे भगवान यहाँ रहे हुए मुझे देखते हैं । इस प्रकार स्तुति कर के वन्दन-नमस्कार किया । फिर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया ।

सूत्र - ६

तत्पश्चात् उस सूर्याभ देव के मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, इष्ट और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ । जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में स्थित आमलकल्या नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में यथाप्रति-रूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर बिराजमान हैं । मेरे लिए श्रेय रूप हैं । जब तथारूप भगवंतों के मात्र नाम और गोत्र के श्रवण करने का ही महाफल होता है तो फिर उनके समक्ष जाने का, उनको वंदन करने का, नमस्कार करने का, उनसे प्रश्न पूछने का और उनकी उपासना करने का प्रसंग मिले तो उसके विषय में कहना ही क्या है ?

आर्य पुरुष के एक भी धार्मिक सुवचन सूने का ही जब महाफल प्राप्त होता है तब उनके पास विपुल अर्थ-उपदेश ग्रहण करने के महान् फल की तो बात ही क्या है ! इसलिए मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करूँ, नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ और कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्य स्वरूप भगवान की पर्युपासना करूँ । ये मेरे लिये अनुगामी रूप से परलोक में हितकर, सुखकर, क्षेमकर, निश्रेयस्कर होगी, ऐसा उसने विचार किया । विचार करके अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और इस प्रकार कहा ।

सूत्र - ७

हे देवानुप्रियो ! यथाप्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्रवर्ती आमलकल्या नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में बिराजमान हैं । हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में स्थित आमलकल्या नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य में बिराजमान श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करो । वन्दन, नमस्कार करो । तुम अपने-अपने नाम और गोत्र उन्हें कह सूनाओ । तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर के बिराजने के आसपास चारों ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि में घास, पत्ते, काष्ठ, कंकड़, अपवित्र, मलिन, सड़ी-गली दुर्गन्धित वस्तुओं को अच्छी तरह से साफ कर दूर एकान्त में ले जाकर फैंको । इसके अनन्तर उस भूमि को पूरी तरह से साफ स्वच्छ करके इस प्रकार से दिव्य सुरभि गंधोदक की वर्षा करो कि जिसमें जल अधिक न बरसे, कीचड़ न हो । इस प्रकार की वर्षा करके उस स्थान को निहृतरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज, प्रशांतरज वाला बना दो ।

जलवर्षा करने के अनन्तर उस स्थान पर सर्वत्र एक हाथ उत्सेध प्रमाण चमकीले जलज और स्थलज पंचरंगे सुगंधित पुष्पों की प्रचुर परिमाण में इस प्रकार से बरसा करो कि उनके वृन्त नीचे की ओर और पंखुडियाँ चित्त रहें । पुष्पवर्षा करने के बाद उस स्थान पर अपनी सुगंध से मन को आकृष्ट करने वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दु-रुष्क तुरुष्क और धूप को जलाओ कि जिसकी सुगंध से सारा वातावरण मधमघा जाए, श्रेष्ठ सुगंध-समूह के कारण वह स्थान गंधवट्टिका समान बन जाए, दिव्य सुरवरों के अभिगमन योग्य हो जाए, ऐसा तुम स्वयं करो और दूसरों से करवाओ । यह करके और करवा कर शीघ्र मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ ।

सूत्र - ८

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सूनकर हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए, यावत् हृदय विकसित हो गया । उन्होंने दोनों हाथों को जोड़ मुकलित दस नखों के द्वारा किये गए सिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके विनयपूर्वक आज्ञा स्वीकार की । 'हे देव ! ऐसा ही करेंगे' इस प्रकार से सविनय आज्ञा स्वीकार

करके ईशान कोण में गये । वैक्रिय समुद्घात किया । वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का रत्नमय दंड बनाया । कर्केतन रत्न, वज्र-रत्न, वैदूर्यरत्न, लोहिताक्ष रत्न, मसारगल्ल रत्न, हंसगर्भ रत्न, पुलक रत्न, सौगन्धिक रत्न, ज्योति रत्न, अंजनरत्न, अंजनपुलक रत्न, रजत रत्न, जातरूप रत्न, अंक रत्न, स्फटिक रत्न और रिष्ट रत्न । इन रत्नों के यथा बादर पुद्गलों को अलग किया और फिर यथासूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके पुनः दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की ।

उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा करके वे उत्कृष्ट त्वरा वाली, चपल, चंड, वेगशील, आँधी जैसी तेज दिव्य गति से तिरछे-तिरछे असंख्यात द्वीप समूहों को पार करते हुए जहाँ जम्बूद्वीपवर्ती भारतवर्ष की आमलकल्या नगरी थी, आम्रशालवन चैत्य था और उसमें भी जहाँ श्रमण भगवान महावीर बिराजमान थे, वहाँ आए । वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, उनको वंदन-नमस्कार किया और इस प्रकार कहा । हे भदन्त ! हम सूर्याभदेव के आभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं, आपका सत्कार-सम्मान करते हैं एवं कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप आप देवानुप्रिय की पर्युपासना करते हैं

सूत्र - ९

'हे देवो !' इस प्रकार से सूर्याभदेव के आभियोगिक देवों को सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने उन देवों से कहा-हे देवो ! यह पुरातन है, यह देवों का जीतकल्प है, यह देवों के लिए कृत्य है । करणीय है, यह आचीर्ण है, यह अनुज्ञात है और वन्दन-नमस्कार करके अपने-अपने नाम-गोत्र कहते हैं, यह पुरातन है यावत् हे देवो ! यह अभ्यनुज्ञात है ।

सूत्र - १०

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सूनकर उन आभियोगिक देवों ने हर्षित यावत् विकसितहृदय होकर भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया । वे उत्तर-पूर्व दिग्भाग में गए । वहाँ जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया और संख्यात योजन का दण्ड बनाया जो कर्केतन यावत् रिष्टरत्नमय था और उन रत्नों के यथाबादर पुद्गलों को अलग किया । दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके, जैसे-कोई तरुण, बलवान, युगवान, युवा नीरोग, स्थिर पंजे वाला, पूर्णरूप से दृढ़ पुष्ट हाथ पैर पृष्ठान्तर वाला, अतिशय निचित परिपुष्ट मांसल गोल कंधोंवाला, चर्मष्टक, मुद्गर और मुक्कों की मार से सघन, पुष्ट सुगठित शरीर वाला, आत्मशक्ति सम्पन्न, युगपत् उत्पन्न तालवृक्षयुगलके समान सीधी लम्बी और पुष्ट भुजाओं वाला, लांघने-कूदने-वेगपूर्वक गमन एवं मर्दन करनेमें समर्थ, कलाविज्ञ, दक्ष, पटु, कुशल, मेधावी एवं कार्यनिपुण भृत्यदारक सीकों से बनी या मूठवाली अथवा बाँस की सीकों से बनी बुहारी लेकर राजप्रांगण, अन्तःपुर, देवकुल, सभा, प्याऊ, आराम को बिना किसी घबराहट चपलता सम्भ्रम और आकुलता के निपुणतापूर्वक चारों तरफ से प्रमार्जित करता है, वैसे ही सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवोंने भी संवर्तक वायु विकुर्वणा की । आसपास चारों ओर एक योजन भूभागमें जो कुछ भी घास पत्ते आदि थे उन सभी को चुन-चुनकर एकान्त स्थानमें ले जा कर फैक दिया और शीघ्र ही अपने कार्य से निवृत्त हुए ।

इसके पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने दुबारा वैक्रिय समुद्घात किया । जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल सींचने वाला नौकर जल से भरे एक बड़े घड़े, वारक को लेकर आराम-फुलवारी यावत् परव को बिना किसी उतावली के यावत् सब तरफ से सींचता है, इसी प्रकार से सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवों ने आकाश में घुमड़-घुमड़कर गरजने वाले और बिजलियों की चमचमाहट से युक्त मेघों की विक्रिया की और चारों ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि में इस प्रकार से सुगन्धित गंधोदक बरसाया कि जिससे न भूमि जलबहुल हुई, न कीचड़ हुआ । इस प्रकार की मेघ वर्षा करके उस स्थान को निहितरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज, प्रशांतरज वाला बना दिया । ऐसा करके वे अपने कार्य से विरत हुए ।

तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने तीसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल मालाकारपुत्र एक बड़ी पुष्पछादिका, पुष्पपटलक, अथवा पुष्पचंगेरिका से कचग्रहवत् फूलों को हाथ में लेकर

छोड़े गए पंचरंगे पुष्पपुंजों को बिखेर कर रज-प्रांगण यावत् परव को सब तरफ से समलंकृत कर देता है उसी प्रकार से पुष्पवर्षक बादलों की विकुर्वणा की । वे अभ्र-बादलों की तरह गरजने लगे, यावत् योजन प्रमाण गोलाकार भूभाग में दीप्तिमान जलज और स्थलज पंचरंगे पुष्पों को प्रभूत मात्रा में इस तरह बरसाया कि सर्वत्र उनकी ऊंचाई एक हाथ प्रमाण हो गई एवं डंडियाँ नीचे और पंखुडियाँ ऊपर रहीं । पुष्पवर्षा करने के पश्चात् मनमोहक सुगन्ध वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तरुष्क-लोभान और धूप को जलाया । उनकी मनमोहक सुगन्ध से सारा प्रदेश महकने लगा, श्रेष्ठ सुगन्ध के कारण सुगन्ध की गुटिका जैसा बन गया । दिव्य एवं श्रेष्ठ देवों के अभिगमन योग्य हो गया । इस प्रकार स्वयं करके और दूसरों से करवा करके उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण किया

इसके पश्चात् वे आभियोगिक देव श्रमण भगवान महावीर के पास आए । श्रमण भगवान महावीर को तीन बार यावत् वंदन नमस्कार कर, आम्रशालवन चैत्य से निकले, उत्कृष्ट गति से यावत् चलते-चलते जहाँ सौधर्म स्वर्ग था, सूर्याभ विमान था, सुधर्मा सभा थी और उसमें भी जहाँ सूर्याभदेव था वहाँ आए और दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय घोष से सूर्याभदेव का अभिनन्दन करके आज्ञा को वापस लौटाया ।

सूत्र - ११

आभियोगिक देवों से इस अर्थ को सूनने के पश्चात् सूर्याभदेव ने हर्षित, सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से प्रफुल्ल हृदय हो पदाति-अनीकाधिपति को बुलाया और बुलाकर कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही सूर्याभ विमान की सुधर्मा सभा में स्थित मेघसमूह जैसी गम्भीर मधुर शब्द करने वाली एक योजन प्रमाण गोलाकार सुस्वर घंटा को तीन बार बजा-बजाकर उच्चातिउच्च स्वर में घोषणा करते हुए यह कहो कि-हे सूर्याभ विमान में रहने वाले देवों और देवियों ! सूर्याभदेव आज्ञा देता है कि देवो ! जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित आमलकल्या नगरी के आम्रशाल वन चैत्य में बिराजमान श्रमण भगवान महावीर की वन्दना करने के लिए सूर्याभदेव जा रहा है । अत एव हे देवानुप्रियो ! आप लोग समस्त ऋद्धि यावत् अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने यान-विमानों में बैठकर बिना विलंब के तत्काल सूर्याभ देव के समक्ष उपस्थित हो जाओ ।

सूत्र - १२

तदनन्तर सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार से आज्ञापित हुआ वह पदात्यनीकाधिपति देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सूनकर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्ल-हृदय हुआ और विनयपूर्वक आज्ञावचनों को स्वीकार करके सूर्याभ विमान में जहाँ सुधर्मा सभा थी और उसमें भी जहाँ मेघमालवत् गम्भीर मधुर ध्वनि करने वाली योजन प्रमाण गोल सुस्वर घंटा थी, वहाँ आकर सुस्वर घंटा को तीन बार बजाया । तब उसकी ध्वनि से सूर्याभ विमान के प्रासादविमान आदि से लेकर कोने-कोने तक के एकान्तशांत स्थान लाखों प्रतिध्वनियों से गूँज उठे । तब उस सुस्वर घंटा की गम्भीर प्रतिध्वनि से सदा सर्वदा रति-क्रिया में आसक्त, नित्य प्रमत्त, एवं विषयसुख में मूर्च्छित सूर्याभविमानवासी देवों और देवियों ने घंटानाद से शीघ्रातिशीघ्र जाग्रत होकर घोषणा के विषय में उत्पन्न कौतूहल की शांति के लिए कान और मन को केन्द्रित किया तथा घंटाव के शांतप्रशांत हो जाने पर उस पदात्यानीकाधिपति देव ने जोर-जोर से उच्च शब्दों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा-

आप सभी सूर्याभविमानवासी देव और देवियाँ सूर्याभ विमानाधिपति की इस हितकारी सुखप्रद घोषणा को हर्षपूर्वक सुनिए-हे देवानुप्रियो! सूर्याभदेवने आप सबको आज्ञा दी है कि सूर्याभदेव जम्बूद्वीपमें वर्तमान भरत क्षेत्रमें स्थित आमलकल्या नगरी के आम्रशालवन चैत्यमें बिराजमान भगवान महावीर की वन्दना करने के लिए जा रहे हैं । अत एव हे देवानुप्रियो! आप सभी समस्त ऋद्धि युक्त होकर अविलम्ब सूर्याभदेव समक्ष उपस्थित हो जाए

सूत्र - १३

तदनन्तर पदात्यनीकाधिपति देव से इस बात को सूनकर सूर्याभविमानवासी सभी वैमानिक देव और देवियाँ हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय हो, कितने वन्दना करने के विचार से, कितने पर्युपासना की आकांक्षा से, कितने सत्कार की भावना से, कितने सम्मान की ईच्छा से, कितने जिनेन्द्र भगवान प्रति कुतूहलजनित भक्ति-

अनुराग से, कितने सूर्याभदेव की आज्ञापालन के लिए, कितने अश्रुतपूर्व को सूने की उत्सुकता से, कितने सूने हुए अर्थविषयक शंकाओं का समाधान करके निःशंक होने के अभिप्राय से, कितने एक दूसरे का अनुसरण करते हुए, कितने जिनभक्ति के अनुराग से, कितने अपना धर्म मानकर और कितने अपना परम्परागत व्यवसाय समझकर सर्व ऋद्धि के साथ यावत् बिना किसी विलम्ब के तत्काल सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हो गए ।

सूत्र - १४

इसके पश्चात् विलम्बि किये बिना उन सभी सूर्याभविमानवासी देवों और देवियों को अपने सामने उपस्थित देखकर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो सूर्याभदेव ने अपने आभियोगिक देव को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट एक यान की विकुर्वणा करो । जिसमें स्थान-स्थान पर हाव-भाव-विलास लीलायुक्त अनेक पुतलियाँ स्थापित हों । ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हों । जो स्तम्भों पर बनी वज्ररत्नों की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखलाई दे । समश्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्र-चालित-जैसे दिखलाई दे । हजारों किरणों व्याप्त एवं हजारों रूपकों से युक्त होने से जो देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान जैसा प्रतीत हो । देखते ही दर्शकों के नयन जिसमें चिपक जायें । जिसका स्पर्श सुखप्रद और रूप शोभासम्पन्न हो । हिलने डुलने पर जिसमें लगी हुई घंटावलि से मधुर मनोहर शब्द-ध्वनि हो रही हो । जो वास्तु-कला से युक्त होने के कारण शुभ कान्त और दर्शनीय हो । निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित, देदीप्यमान मणियों और रत्नों के घुँघरुओं से व्याप्त हो, एक लाख योजन विस्तार वाला हो । दिव्य तीव्रगति से चलने की शक्ति-सामर्थ्य सम्पन्न एवं शीघ्रगामी हो । इस प्रकार के यान-विमान की विकुर्वणा-रचना करके हमें शीघ्र ही इसकी सूचना दो ।

सूत्र - १५

तदनन्तर वह आभियोगिक देव सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार का आदेश दिये जाने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ यावत् प्रफुल्ल हृदय हो दोनों हाथ जोड़ यावत् आज्ञा को सूना यावत् उसे स्वीकार करके वह ईशानकोण में आया । वहाँ आकर वैक्रिय समुद्घात किया और संख्यात योजन ऊपर-नीचे लंबे दण्ड बनाया यावत् यथाबादर पुद्गलों को अलग हटाकर सारभूत सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके दूसरी बार पुनः वैक्रिय समुद्घात करके अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट यावत् दिव्यमान-विमान की विकुर्वणा करने में प्रवृत्त हो गया ।

इसके अनन्तर सर्वप्रथम आभियोगिक देवों ने उस दिव्य यान की तीन दिशाओं में विशिष्ट रूप तीन सोपानों वाली तीन सोपान पंक्तियों की रचना की । इनकी नेम, वेदिका वज्ररत्नों से बनी हुई थी । रिष्ट रत्नमय इनके प्रतिष्ठान और वैडूर्य रत्नमय स्तम्भ थे । स्वर्ण-रजतमय फलक थे । लोहिताक्ष रत्नमयी इनमें सूचियाँ लगी थीं । वज्ररत्नों से इनकी संधियाँ भरी हुई थीं, चढ़ने-उतरने में अवलंबन के लिए अनेक प्रकार के मणिरत्नों से बनी इनकी अवलंबनबाहा थीं तथा ये त्रिसोपान पंक्तियाँ मन को प्रसन्न करने वाली यावत् असाधारण सुन्दर थीं । इन दर्शनीय मनमोहक प्रत्येक त्रिसोपान-पंक्तियों के आगे तोरण बंधे हुए थे । वे तोरण मणियों से बने हुए थे । गिर न सके, इस विचार से विविध प्रकार के मणिमय स्तम्भों के ऊपर भली-भाँति निश्चल रूप से बाँधे गए थे । बीच के अन्तराल विविध प्रकार के मोतियों से निर्मित रूपकों से उपशोभित थे और सलमा सितारों आदि से बने हुए तारा-रूपकों से व्याप्त यावत् अतीव मनोहर थे ।

उन तोरणों के ऊपरी भाग में स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दिकावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल और दर्पण, इन आठ-आठ मांगलिकों की रचना की । जो यावत् उन तोरणों के ऊपर स्वच्छ, निर्मल, सलौनी, रजत मय पट्ट से शोभित वज्रनिर्मित डंडियोंवाली, कमलों जैसी सुरभि गंध से सुगंधित, रमणीय, आह्लादकारी, दर्शनीय, मनोहर, अतीव मनोहर, बहुत सी कृष्ण चामर ध्वजाओं यावत् श्वेत चामर ध्वजाओं की रचना की । उन तोरणों के शिरोभागमें निर्मल यावत् अत्यन्त शोभनीय रत्नों से बने अनेक छत्रातिछत्रों पताकातिपताकाओं घंटायुगल, उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुंडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों के झूमकों को लटकाया ।

सोपानों आदि की रचना करने के अनन्तर उस आभियोगिक देव ने उस दिव्यविमान के अन्दर एकदम समतल भूमिभाग की विक्रिया की। वह भूभाग आलिंगपुष्कर मृदंग पुष्कर, पूर्ण रूप से भरे हुए सरोवर के ऊपरी भाग, करतल, चन्द्रमंडल, सूर्यमंडल, दर्पण मंडल अथवा शंकु जैसे बड़े-बड़े खीलों को ठोक और खींचकर चारों ओर से सम किये गये भेड़, बैल, सुअर, सिंह, व्याघ्र, बकरी और भेड़िये के चमड़े के समान अत्यन्त रमणीय एवं सम था। वह सम भूमिभाग अनेक प्रकार के वर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, पुष्पमाणव, शरावसंपुट, मतस्यांड, मकराण्ड जार, मार आदि शुभलक्षणों और कृष्ण, नील, लाल, पीले और श्वेत इन पाँच वर्णों की मणियों से उपशोभित था और उनमें कितनी ही मणियों में पुष्पलताओं, कमलपत्रों, समुद्रतरंगों, वसंतलताओं, पद्मलताओं आदि के चित्राम बने हुए थे तथा वे सभी मणियाँ निर्मल, चमकदार किरणों वाली उद्योत-शीतल प्रकाश वाली थी।

उन मणियों में कृष्णवर्ण वाली मणियाँ क्या सचमुच में सघन मेघ घटाओं, अंजनसुरमा, खंजन काजल, काली स्याही, काली स्याही की गोली, भैसे के सींग की गोली, भ्रमर, भ्रमर पंक्ति, भ्रमर पंख, जामुन, कच्चे अरीठे के बीज अथवा कौए के बच्चे कोयल, हाथी, हाथी के बच्चे, कृष्ण सर्प, कृष्ण बकुल, शरद ऋतु के मेघरहित आकाश, कृष्ण अशोक वृक्ष, कृष्ण कनेर, कृष्ण बंधुजीवक जैसी काली थीं ? हे आयुष्मन् श्रमणों ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—वे काली मणियाँ तो इन सभी उपमाओं से भी अधिक इष्टतर कांततर मनोजतर और अतीव मनोहर कृष्ण वर्ण वाली थीं।

उनमें की नील वर्ण की मणियाँ क्या भृंगकीट, भृंग के पंख, शुक, शुकपंख, चाष पक्षी, चाष पंख, नील, नील के अंदर का भाग, नील गुटिका, सांवा, उच्चन्तक, वनराजि, बलदेव के पहनने के वस्त्र, मोर की गर्दन, कबूतर की गर्दन, अलसी के फूल, बाणपुष्प, अंजनकेशी के फूल, नीलकमल, नीले अशोक, नीले कनेर और बंधुजीवक जैसी नीली थीं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है। वे नीली मणियाँ तो इन उपमेय पदार्थों से भी अधिक इष्टतर यावत् अतीव मनोहर नील वर्ण वाली थीं।

उन मणियों में लोहित रंग की मणियों का रंग सचमुच में क्या शशक के खून, भेड़ के रक्त, सुअर के रक्त, मनुष्य के रक्त, भैंस के रक्त, बाल इन्द्रगोप, प्रातः-कालीन सूर्य, संध्या राग, गुंजाफल के आधे भाग, जपापुष्प, किंशुक पुष्प, परिजातकुसुम, शुद्ध हिंगलुक, प्रवाल, प्रवाल के अंकुर, लोहिताक्ष मणि, लाख के रंग, कृमिराग से रंगे कंबल, चीणा के आटे, लाल कमल, लाल अशोक, लाल कनेर अथवा रक्त बंधुजीवक जैसा लाल था ? ये बोध समर्थ नहीं है। वे मणियाँ तो इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अत्यन्त मनोहर रक्त वर्ण की थीं।

उन मणियों में पीले रंग की मणियों का पीतरंग क्या सचमुच में स्वर्ण चंपा, स्वर्ण चंपा की छाल, स्वर्ण चंपा के अंदर का भाग, हल्दी-हल्दी के अंदर का भाग, हल्दी की गोली हरताल, हरताल के अंदर का भाग, हरताल की गोली, चिकुर, चिकुर के रंग से रंगे वस्त्र, शुद्ध स्वर्ण की कसौटी पर खींची गई रेखा, वासुदेव के वस्त्रों, अल्लकी के फूल, चंपाकुसुम, कूष्मांड के फूल, कोरंटक पुष्प की माला, तडवडा के फूल, घोषातिकि पुष्प, सुवर्णयूथिका, सुहिरण्य के फूल, बीजक फूल, पीले अशोक, पीले कनेर अथवा पीले बंधुजीवक जैसा पीला था ? आयुष्मन् श्रमणों ! ये अर्थ समर्थ नहीं है। वे पीली मणियाँ तो इन से भी इष्टतर यावत् पीले वर्ण वाली थीं।

हे भगवन् ! उन मणियों में जो श्वेत वर्ण की मणियाँ थीं क्या वे अंक रत्न, शंख, चन्द्रमा, कुमुद, शुद्ध जल, ओस बिन्दु, दही, दूध, दूध के फेन, क्रौंच पक्षी की पंक्ति, मोतियों के हार, हंस पंक्ति, बलाका पंक्ति, चन्द्रमा की पंक्ति, शरद ऋतु के मेघ, अग्नि में तपाकर धोये गए चाँदी के पतरे, चावल के आटे, कुन्दपुष्प-समूह, कुमुद पुष्प के समूह, सूखी सिम्बा फली, मयूरपिच्छ का सफेद मध्य भाग, विस-मृणाल, मृणालिका, हाथी के दाँत, लोंग के फूल, पुंडरीक कमल, श्वेत अशोक, श्वेत कनेर अथवा श्वेत बंधुजीवक जैसी श्वेत वर्ण की थीं ? आयुष्मन् श्रमणों ! ऐसा नहीं है। वे श्वेत मणियाँ तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् सरस, मनोहर आदि मनोज्ञ श्वेत वर्ण वाली थीं। उस दिव्य यान विमान के अन्तर्वर्ती सम भूभाग में खचित मणियाँ क्या वैसी ही सुरभिगंध वाली थीं जैसी कोष्ठ तगर, इलाइची, चोया, चंपा, दमनक, कुंकुम, चंदन, उशीर, मरुआ, जाई पुष्प, जूही, मल्लिका, स्नान-मल्लिका, केतकी,

पाटल, नवमल्लिका, अगर, लवंग, वास, कपूर और कपूर के पुड़ों को अनुकूल वायु में खोलने पर, कूटने पर, तोड़ने पर, उत्कीर्ण करने पर, बिखेरने पर, उपभोग करने पर, दूसरों को देने पर, एक पात्र से दूसरे पात्र में रखने पर, उदार, आकर्षक, मनोज्ञ, मनहर घ्राण और मन को शांतिदायक गंध सभी दिशाओं में मघमघाती हुई फैलती है, महकती है ? आयुष्मन् श्रमणों ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । ये तो मात्र उपमाएं हैं । वे मणियाँ तो इनसे भी इष्टतर यावत् मनोज्ञ-सुरभि गंध वाली थीं । उन मणियों का स्पर्श क्या अजिनक रूई, बूर, मक्खन, हंसगर्भ, शिरीष पुष्पों के समूह अथवा नवजात कमलपत्रों की राशि जैसा कोमल था ? आयुष्मन् श्रमणों ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । वे मणियाँ तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् स्पर्शवाली थीं ।

तदनन्तर आभियोगिक देवों ने उस दिव्य यान विमान के अंदर बीचों-बीच एक विशाल प्रेक्षागृह मण्डप की रचना की । वह प्रेक्षागृह मण्डप अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट था । अभ्युन्नत एवं सुरचित वेदिकाओं, तोरणों तथा सुन्दर पुतलियों से सजाया गया था । सुन्दर विशिष्ट रमणीय संस्थान प्रशस्त और विमल वैदूर्य मणियों से निर्मित स्तम्भों से उपशोभित था । उसका भूमिभाग विविध प्रकार की उज्ज्वल मणियों से खचित, सुविभक्त एवं अत्यन्त सम था । उसमें ईहामृग वृषभ, तुरंग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ, चमरी गाय, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित थे । स्तम्भों के शिरोभाग में वज्र रत्नों से बनी हुई वेदिकाओं से मनोहर दिखता था । यंत्रचालित-जैसे विद्याधर युगलों से शोभित था । सूर्य के सदृश हजारों किरणों से सुशोभित एवं हजारों सुन्दर घंटाओ से युक्त था । देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान होने से दर्शकों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाला, सुखप्रद स्पर्श और रूप-शोभा से सम्पन्न था । उस पर स्वर्ण, मणि एवं रत्नमय स्तूप बने हुए थे । उसके शिखर का अग्र भाग नाना प्रकार की घंटियों और पंचरंगी पताकाओं से परिमंडित था । और अपनी चमचमाहट एवं सभी ओर फैल रही किरणों के कारण चंचल-सा दिखता था ।

उसका प्रांगण गोबर से लिपा था और दीवारें सफेद मिट्टी से पुती थीं । स्थान-स्थान पर सरस गोशीर्ष रक्त-चंदन के हाथे लगे हुए थे और चंदनचर्चित कलश रखे थे । प्रत्येक द्वार तोरणों और चन्दन-कलशों से शोभित थे । दीवारों पर ऊपर से लेकर नीचे तक सुगंधित गोल मालाएं लटक रही थीं । सरस सुगन्धित पंचरंगे पुष्पों के मांडने बने हुए थे । उत्तम कृष्ण अगर, कुन्दरूष्क, तरुष्क और धूप की मोहक सुगंध से महक रहा था और उस उत्तम सुरभि गंध से गंध की वर्तिका प्रतीत होता था । अप्सराओं के समुदायों के गमनागमन से व्याप्त था । दिव्य वाद्यों के निनाद से गूँज रहा था । वह स्वच्छ यावत् प्रतिरूप था । उस प्रेक्षागृह मंडप के अंदर अतीव सम रमणीय भू-भाग की रचना की । उस भूमि-भाग में खचित मणियों के रूप-रंग, गंध आदि की समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् । उस सम और रमणीय प्रेक्षागृह मंडप की छत में पद्मलता आदि के चित्रामों से युक्त यावत् अतीव मनोहर चंदेवा बांधा । उस सम रमणीय भूमिभाग के भी मध्यभाग में वज्ररत्नों से निर्मित एक विशाल अक्षपाट की रचना की । उस क्रीडामंच के बीचोंबीच आठ योजन लम्बी-चौड़ी और चार योजन मोटी पूर्णतया वज्ररत्नों से बनी हुई निर्मल, चिकनी यावत् प्रतिरूपा एक विशाल मणिपीठिका की विकुर्वणा की ।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक महान सिंहासन बनाया । उस सिंहासन के चक्कला सोने के, सिंहाकृति वाले हत्थे रत्नों के, पाये सोने के, पादशीर्षक अनेक प्रकार की मणियों के और बीच के गाते जाम्बूनद के थे । उसकी संधियाँ वज्ररत्नों से भरी हुई थीं और मध्य भाग की बुनाई का वेंत बाण मणिमय था । उस सिंहासन पर ईहामृग, वृषभ तुरंग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु सरभ, चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र बने हुए थे । सिंहासन के सामने स्थापित पाद-पीठ सर्वश्रेष्ठ मूल्यवान मणियों और रत्नों का बना हुआ था । उस पादपीठ पर पैर रखने के लिए बिछा हुआ मसूरक नवतृण कुशाग्र और केसर तंतुओं जैसे अत्यन्त सुकोमल सुन्दर आस्तारक से ढका हुआ था । उसका स्पर्श आजिनक रूई, बूर, मक्खन और आक की रूई जैसा मृदु-कोमल था । वह सुन्दर सुरचित रजस्राण से आच्छादित था । उस पर कसीदा काढ़े क्षौम दुकूल का चदर बिछा हुआ था और अत्यन्त रमणीय लाल वस्त्र से आच्छादित था । जिससे वह सिंहासन अत्यन्त रमणीय, मन को प्रसन्न करने वाला,

दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप-अतीव मनोहर दिखता था ।

उस सिंहासन के ऊपरी भाग में शंख, कुंदपुष्प, जलकण, मथे हुए क्षीरोदधि के फेनपुंज के सदृश प्रभा वाले रत्नों से बने हुए, स्वच्छ, निर्मल, स्निग्ध प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप एक विजयदूष्य को बांधा। उस सिंहासन के ऊपरी भाग में बंधे हुए विजयदूष्य के बीचों-बीच वज्ररत्नमय एक अंकुश लगाया । उस वज्ररत्नमयी अंकुश में कुंभ परिणाम जैसे एक बड़े मुक्तादाम को लटकाया और वह कुंभपरिमाण वाला मुक्तादाम भी चारों दिशाओं में उसके परिमाण से आधे और दूसरे चार मुक्तादामों से परिवेष्टित था ।

वे सभी दाम सोने के लंबूसकों, विविध प्रकार की मणियों, रत्नों अथवा विविध प्रकार के मणिरत्नों से बने हुए हारों, अर्ध हारों के समुदायों से शोभित हो रहे थे और पास-पास टंगे होने से लटकने से जब पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की मन्द-मन्द हवा के झोकों से हिलते-डुलते तो एक दूसरे से टकराने पर विशिष्ट, मनोज्ञ, मनोहर, कर्ण एवं मन को शांति प्रदान करने वाली रुनझुन रुनजुन शब्द-ध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव शोभित होते थे ।

सूत्र - १६

तदनन्तर आभियोगिक देव ने उस सिंहासन के पश्चिमोत्तर, उत्तर और उत्तर पूर्व दिग्भाग में सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देवों के बैठने के लिए चार हजार भद्रासनों की रचना की । पूर्व दिशा में सूर्याभदेव की परिवार सहित चार अग्र महिषियों के लिए चार हजार भद्रासनों की रचना की । दक्षिणपूर्व दिशा में सूर्याभदेव की आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के लिए आठ हजार भद्रासनों की रचना की । दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के देवों के लिए दस हजार भद्रासनों की, दक्षिण-पश्चिम दिग्भाग में बाह्य परिषदा के बारह हजार देवों के लिए बारह हजार भद्रासनों की और पश्चिम दिशा में सप्त अनीकाधिपतियों के लिए सात भद्रासनों की रचना की । तत्पश्चात् सूर्याभदेव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के लिए क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा चार-चार हजार, इस प्रकार सोलह हजार भद्रासनों को स्थापित किया ।

उस दिव्य यान-विमान का रूप-सौन्दर्य क्या तत्काल उदित हेमन्त ऋतु के बाल सूर्य, रात्रि में प्रज्वलित खदिर के अंगारों, पूरी तरह से कुसुमित जपापुष्पवन, पलाशवन अथवा पारिजातवन जैसा लाल था ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । हे आयुष्मन् श्रमणों ! वह यानविमान तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् रक्तवर्ण वाला था । उसी प्रकार उसका गंध और स्पर्श भी पूर्व में किये गये मणियों के वर्णन से भी अधिक इष्टतर यावत् रमणीय था । दिव्य यान-विमान की रचना करने के अनन्तर आभियोगिक देव सूर्याभदेवके पास आया । सूर्याभदेव को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् आज्ञा वापस लौटाई ।

आभियोगिक देव से दिव्य यान-विमान के निर्माण के समाचार सूनने के पश्चात् इस सूर्याभदेव ने हर्षित, संतुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो, जिनेन्द्र भगवान के सम्मुख गमन करने योग्य दिव्य उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा की। उनके अपने परिवार सहित चार अग्र महिषियों एवं गंधर्व तथा नाट्य इन दो अनीकों को साथ लेकर उस दिव्य यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशावर्ती अतीव मनोहर त्रिसोपानों से दिव्य यान-विमान पर आरूढ हुआ और सिंहासन के समीप आकर पूर्व की ओर मुख करके उस पर बैठ गया । तत्पश्चात् सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव उस यान-विमान की प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस पर चढ़े और पहले से ही स्थापित भद्रासनों पर बैठे तथा दूसरे देव एवं देवियाँ भी प्रदक्षिणापूर्वक दक्षिण दिशा के सोपानों द्वारा उस दिव्य यान-विमान पर चढ़कर पहले से ही निश्चित भद्रासनों पर बेटे ।

उस दिव्य यान-विमान पर सूर्याभदेव आदि देव-देवियों के आरूढ हो जाने के पश्चात् अनुक्रम से आठ अंगुल-द्रव्य उसके सामने चले । स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण । आठ मंगल द्रव्यों के अनन्तर पूर्ण कलश, भृंगार, चामर सहित दिव्य छत्र, पताका तथा इनके साथ गगन तल का स्पर्श करती हुई अतिशय सुन्दर, आलोकदर्शनीय और वायु से फरफराती हुई एक बहुत ऊंची विजय वैजयंती पताका अनुक्रम से उसके आगे चली । विजय वैजयंती

पताका के अनन्तर वैदूर्यरत्नों से निर्मित देदीप्यमान, निर्मल दंड वाले लटकती हुई कोरंट पुष्पों को मालाओं से सुशोभित, चंद्रमंडल के समान निर्मल, श्वेत-धवल ऊंचा आतपत्र-छत्र और अनेक किंकर देवों द्वारा वहन किया जा रहा, मणिरत्नों से बने हुए वेलवूटों से उपशोभित, पादुकाद्वय युक्त पादपीठ सहित प्रवर-उत्तम सिंहासन अनुक्रम से उसके आगे चला ।

तत्पश्चात् वज्ररत्नों से निर्मित गोलाकार कमनीय-मनो, दांडे वाला, शेष ध्वजाओं में विशिष्ट एवं और दूसरी बहुत सी मनोरम छोटी बड़ी अनेक प्रकार की रंगबिरंगी पंचरंगी ध्वजाओं से परिमंडित, वायु वेग से फहराती हुई विजयवैजयंती पताका, छत्रातिछत्र से युक्त, आकाशमंडल को स्पर्श करने वाला हजार योजन ऊंचा एक बहुत बड़ा इन्द्रध्वज नामक ध्वज अनुक्रम से उसके आगे चला । इन्द्रध्वज के अनन्तर सुन्दर वेषभूषा से सुसज्जित, समस्त आभूषण-अलंकारों से विभूषित और अत्यन्त प्रभावशाली सुभटों के समुदायों को साथ लेकर पाँच सेनापति अनुक्रम से आगे चले । तदनन्तर बहुत से आभियोगिक देव और देवियाँ अपनी-अपनी योग्य-विशिष्ट वेशभूषाओं और विशेषतादर्शक अपने-अपने प्रतीक चिह्नों से सजधज कर अपने-अपने परिकर, अपने-अपने नेजा और अपने अपने कार्यों के लिए कार्योंपयोगी उपकरणों को साथ लेकर अनुक्रम से आगे चले । तत्पश्चात् सबसे अंत में उस सूर्याभ विमान में रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियाँ अपनी अपनी समस्त ऋद्धि से, यावत् प्रतिध्वनि से शोभित होते हुए उस सूर्याभदेव के आगे-पीछे, आजू-बाजू में साथ-साथ चले ।

सूत्र - १७

तत्पश्चात् पाँच अनीकाधिपतियों द्वारा परिरक्षित वज्ररत्नमयी गोल मनोज्ञ संस्थान वाले यावत् एक हजार योजन लम्बे अत्यंत ऊंचे महेन्द्रध्वज को आगे करके वह सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों एवं सूर्याभविमान वासी और दूसरे वैमानिक देव-देवियों के साथ समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यनिनादों सहित दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव का अनुभव, प्रदर्शन और अवलोकन करते हुए सौधर्मकल्प के मध्य भाग में से नीकलकर सौधर्मकल्प के उत्तरदिग्वर्ती निर्याण मार्ग के पास आया और एक लाख योजन प्रमाण वेग वाली यावत् उत्कृष्ट दिव्य देवगति से नीचे ऊतर कर गमन करते हुए तीरछे, असंख्यातद्वीप समुद्रों के बीचोंबीच से होता हुआ नन्दीश्वरद्वीप और उसकी दक्षिणपूर्ण दिशा में स्थिर रतिकर पर्वत पर आया । उस दिव्य देव ऋद्धि यावत् दिव्य देवानुभाव को धीरे धीरे संकुचित और संक्षिप्त करके जहाँ जम्बूद्वीप का भरतक्षेत्र था एवं जहाँ आमलकल्या नगरी तथा आम्रशालवन चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान महावीर बिराजमान थे, वहाँ आया, उस दिव्ययान के साथ श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके भगवान महावीर की अपेक्षा ईशानकोण-में ले जाकर भूमि से चार अंगुल ऊपर अधर रखकर उस दिव्य-यान विमान को खड़ा किया ।

उस दिव्य यान-विमान को खड़ा करके वह सपरिवार चारों अग्रमहिषियों, गंधर्व और नाट्य इन दोनों अनीकों को साथ लेकर पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान-प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य यान-विमान से नीचे ऊतरा । तत्पश्चात् सूर्याभदेव के चार सामानिक देव उत्तरदिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान से नीचे ऊतरे । तथा इनके अतिरिक्त शेष दूसरे देव और देवियाँ दक्षिण दिशा के त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान से ऊतरे । तदनन्तर वह सूर्याभदेव सपरिवार चार अग्रमहिषियों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य बहुत से सूर्याभ-विमानवासी देव-देवियों के साथ समस्त ऋद्धि-वैभव यावत् वाद्य निनादों सहित चलता हुआ श्रमण भगवान महावीर के समीप आया । तीन बार प्रदक्षिणा की । वन्दन-नमस्कार किया और सविनय बोला- 'हे भदन्त ! मैं सूर्याभदेव आप देवानुप्रिय को वन्दन करता हूँ, नमन करता हूँ यावत् आपकी पर्युपासना करता हूँ ।'

सूत्र - १८

श्रमण भगवान महावीर ने उस सूर्याभदेव से इस प्रकार कहा- 'हे सूर्याभ ! यह पुरातन है । यह जीत-परम्परा व्यवहार है । यह कृत्य है । यह करणीय है । यह पूर्व परम्परा से आचरित है । यह अभ्यनुज्ञात है कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहंत भगवंतों को वन्दन करते हैं, नमन करते हैं और वे

अपने-अपने नाम गोत्र का उच्चारण करते हैं। अत एव हे सूर्याभ ! तुम्हारी यह सारी प्रवृत्ति पुरातन यावत् संमत है

सूत्र - १९

तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सूनकर अतीव हर्षित हुआ यावत् विकसित हृदयवाला हुआ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके यथोचित स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, अभिमुख विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर अंजलि कर पर्युपासना करने लगा।

सूत्र - २०

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने सूर्याभदेव को, और उस उपस्थित विशाल परिषद् को यावत् धर्मदेशना सुनाई। देशना सूनकर परिषद् जिस दिशा से आई थी वापस उसी ओर लौट गई।

सूत्र - २१

तदनन्तर वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने धर्मश्रवण कर और हृदय में अवधारित कर हर्षित एवं संतुष्ट यावत् आह्लादित हृदय हुआ। अपने आसन से खड़े होकर उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार प्रश्न किया-भगवन् ! मैं सूर्याभदेव क्या भवसिद्धिक हूँ अथवा अभवसिद्धिक ? सम्यग्दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि ? परित्त संसारी हूँ अथवा अनन्त संसारी ? सुलभबोधि हूँ अथवा दुर्लभबोधि ? आराधक अथवा विराधक ? चरम शरीरी हूँ अथवा अचरम शरीरी ? 'सूर्याभ !' इस प्रकार से सूर्याभदेव को सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने सूर्याभदेव को उत्तर दिया-हे सूर्याभ ! तुम भवसिद्धिक हो, अभवसिद्धिक नहीं हो, यावत् चरम शरीरी हो, अचरम शरीरी नहीं हो।

सूत्र - २२

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सूनकर उस सूर्याभदेव ने हर्षित सन्तुष्ट चित्त से आनन्दित और परम प्रसन्न होते हुए श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और निवेदन किया-हे भदन्त ! आप सब जानते हैं और सब देखते हैं। सर्व काल को आप जानते और देखते हैं; सर्व भावों को आप जानते और देखते हैं। अत एव हे देवानुप्रिय ! पहले अथवा पश्चात् लब्ध, प्राप्त एवं अधिगत इस प्रकार की मेरी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति तथा दिव्य देवप्रभाव को भी जानते और देखते हैं। इसलिए आप देवानुप्रिय की भक्तिवश होकर मैं चाहता हूँ कि गौतम आदि निर्ग्रन्थों के समक्ष इस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव तथा बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि को प्रदर्शित करूँ।

सूत्र - २३

तब सूर्याभदेव के इस प्रकार निवेदन करने पर श्रमण भगवान महावीर ने सूर्याभदेव के इस कथन का आदर नहीं किया, उसकी अनुमोदना नहीं की, किन्तु मौन रहे। तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने दूसरी और तीसरी बार भी पुनः इसी प्रकार से श्रमण भगवान महावीर से निवेदन किया-हे भगवन् ! आप सब जानते हैं आदि, यावत् नाट्य-विधि प्रदर्शित करना चाहता हूँ। इस प्रकार कहकर उसने दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की। वन्दन-नमस्कार किया और उत्तर पूर्व दिशा में गया। वहाँ जाकर वैक्रियसमुद्घात करके संख्यात योजन लम्बा दण्ड नीकाला। यथाबादर पुद्गलों को दूर करके यथासूक्ष्म पुद्गलों का संचय किया। इसके बाद पुनः दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके यावत् बहुसमरमणीय भूमिभाग की रचना की। जो पूर्ववर्णित आलिंग पुष्कर आदि के समान सर्वप्रकार से समतल यावत् रूप, रस, गंध और स्पर्श वाले मणियों से सुशोभित था। उस अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग के मध्यातिमध्य भाग में प्रेक्षागृहमंडप की रचना की। वह अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर संनिविष्ट था इत्यादि वर्णन पूर्ववत्। उस प्रेक्षागृह मंडप के अन्तर अतीव समतल, रमणीय भूमिभाग, चन्देवा, रंगमंच और मणिपीठिका की विकुर्वणा की और उस मणिपीठिका के ऊपर फिर उसने पादपीठ, छत्र आदि से युक्त सिंहासन की रचना यावत् उसका ऊपरी भाग मुक्तादामों से शोभित हो रहा था।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान महावीर की ओर देखकर प्रणाम किया और 'हे भगवन् ! मुझे

आज्ञा दीजिए' कहकर तीर्थकर की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन-पर सुखपूर्वक बैठ गया। इसके पश्चात् नाट्यविधि प्रारम्भ करने के लिए सबसे पहले उस सूर्याभदेव ने निपुण शिल्पियों द्वारा बनाये गये अनेक प्रकार की विमल मणियों, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित भाग्यशालियों के योग्य, देदीप्यमान, कटक त्रुटित आदि श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित उज्ज्वल पुष्ट दीर्घ दाहिनी भुजा को फैलाया-उस दाहिनी भुजा से एक सौ आठ देवकुमार निकले। वे समान शरीर-आकार, समान रंग-रूप, समान वय, समान लावण्य, युवोचित गुणों वाले, एक जैसे आभरणों, वस्त्रों और नाट्योपकरणों से सुसज्जित, कन्धों के दोनों ओर लटकते पल्लोवाले उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए, शरीर पर रंग-बिरंगे कंचुक वस्त्रों को पहने हुए, हवा का झोंका लगने पर विनिर्गत फेन जैसी प्रतीत होने वाली झालर युक्त चित्र-विचित्र देदीप्यमान, लटकते अधोवस्त्रों को धारण किये हुए, एकावली आदि आभूषणों से शोभायमान कण्ठ एवं वक्षःस्थल वाले और नृत्य करने के लिए तत्पर थे।

तदनन्तर सूर्याभदेव ने अनेक प्रकार की मणियों आदि से निर्मित आभूषणों से विभूषित यावत् पीवर-पुष्ट एवं लम्बी बांयों भुजा को फैलाया। उस भुजा से समान शरीराकृति, समान रंग, समान वय, समान लावण्य-रूप-यौवन गुणों वाली, एक जैसे आभूषणों, दोनों ओर लटकते पल्ले वाले उत्तरीय वस्त्रों और नाट्योपकरणों से सुसज्जित, ललाट पर तिलक, मस्तक पर आमेल, गले में ग्रैवेयक और कंचुकी धारण किये हुए अनेक प्रकार के मणि-रत्नों के आभूषणों से विराजित अंग-प्रत्यंगों-वाला चन्द्रमुखी, चन्द्रार्ध समान ललाट वाली चन्द्रमा से भी अधिक सौम्य दिखाई देने वाली, उल्का के समान चमकती, शृंगार गृह के तुल्य चारु-सुन्दर वेष से शोभित, हँसने-बोलने आदि में पटु, नृत्य करने के लिए तत्पर एक सौ आठ देवकुमारियाँ निकलीं।

तत्पश्चात् १०८ देवकुमारों और देवकुमारियों की विकुर्वणा करने के पश्चात् सूर्याभदेवने १०८ शंखों की और १०८ शंखवादकों की विकुर्वणा की। इसी प्रकार से एक सौ आठ शृंगों और उनके वादकों की, शंखिकाओं और उनके वादकों की, खरमुखियों और उनके वादकों की, पेयों और उनके वादकों की, पिरिपिरिकाओं और उनके वादकों की विकुर्वणा की। इस तरह कुल मिलाकर उनचास प्रकार के वाद्यों और उनके बजाने वालों की विकुर्वणा की। तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने उन देवकुमारों तथा देवकुमारियों को बुलाया। सूर्याभदेव द्वारा बुलाये जाने पर वे देवकुमार और देवकुमारियाँ हर्षित होकर यावत् सूर्याभदेव के पास आए और दोनों हाथ जोड़कर यावत् अभिनन्दन कर सूर्याभदेव से विनयपूर्वक बोले-हे देवानुप्रिय ! हमें जो करना है, उनकी आज्ञा दीजिए।

तब सूर्याभदेव ने उन देवकुमारों और देवकुमारियों से कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम सभी श्रमण भगवान महावीर के पास जाओ, तीन बार श्रमण भगवान महावीर की प्रदक्षिणा करो। वन्दन-नमस्कार करो। गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव वाली, बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि करके दिखलाओ। शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा वापस मुझे लौटाओ। तदनन्तर वे सभी देवकुमार और देव-कुमारियाँ सूर्याभदेव की इस आज्ञा सूनकर हर्षित हुए यावत् दोनों हाथ जोड़कर यावत् आज्ञा को स्वीकार किया। श्रमण भगवान के पास आकर यावत् नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ बिराजमान थे, वहाँ आए।

सूत्र - २४

इसके बाद सभी देवकुमार और देवकुमारियाँ पंक्तिबद्ध होकर एक साथ मिले। सब एक साथ नीचे नमे और एक साथ ही अपना मस्तक ऊपर कर सीधे खड़े हुए। इसी क्रम से पुनः कर सीधे खड़े होकर नीचे नमे और फिर सीधे खड़े हुए। खड़े होकर एक साथ अलग-अलग फैल गए और फिर यथायोग्य नृत्य-गान आदि के उपकरणों-वाद्यों को लेकर एक साथ ही बजाने लगे, एक साथ ही गाने लगे और एक साथ नृत्य करने लगे। उनका संगीत इस प्रकार का था कि उर से उद्गत होने पर आदि में मन्द मन्द, मूर्च्छा में आने पर तार और कंठ स्थान में विशेष तार स्वर वाला था। इस तरह त्रिस्थान-समुद्गत वह संगीत त्रिसमय रेचक से रचित होने पर त्रिविध रूप था। संगीत की मधुर प्रतिध्वनि-गुंजारव में समस्त प्रेक्षागृह मण्डप गूँजने लगता था। गेय राग-रागनीके अनुरूप था। त्रिस्थान त्रिकरण से शुद्ध था। गूँजती हुई बांसुरी और वीणा के स्वरों से एक रूप मिला हुआ था। एक-दूसरे

की बजती हथेली के स्वर का अनुसरण करता था । मुरज और कंशिका आदि वाद्यों की झंकारों तथा नर्तकों के पादक्षेप से बराबर मेल खाता था । वीणा के लय के अनुरूप था । वीणा आदि वाद्य धूनों का अनुकरण करने वाला था । कोयल की कुहू-कुहू जैसा मधुर तथा सर्व प्रकार से सम, सललित मनोहर, मृदु, रिभित पदसंचार युक्त, श्रोताओं को रतिकर, सुखान्त ऐसा उन नर्तकों का नृत्यसज्ज विशिष्ट प्रकार का उत्तमोत्तम संगीत था ।

मधुर संगीत-गान के साथ-साथ नृत्य करने वाले देवकुमार और कुमारिकाओं में से शंख, शृंग, शंखिका, खरमुखी, पेया पिरिपिरका के वादक उन्हें उद्धमानित करते, पणव और पटह पर आघात करते, भंभा और होरंभ पर टंकार मारते, भेरी झल्लरी और दुन्दुभि को ताड़ित करते, मुरज, मृदंग और नन्दीमृदंग का आलाप लेते, आलिंग कुस्तुम्ब, गोमुखी और मादल पर उताड़न करते, वीणा विपंची और वल्लकी को मूर्च्छित करते, महती वीणा कच्छ-पीवीणा और चित्रवीणा को कूटते, बद्धीस, सुघोषा, नन्दीघोष का सारण करते, भ्रामरी-षड् भ्रामरी और परिवादनी वीणा का स्फोटन करते, तूण, तुम्बवीणा का स्पर्श करते, आमोट झांझ कुम्भ और नकुल को खनखनाते, मृदंग-हुडुक्क-विचिक्की को धीमे से छूते, करड़ डिंडिम किणित और कडम्ब को बजाते, दर्दरक, दर्दरिका कुस्तुंबुरु, कलशिका मड्डु को जोर-जोर से ताड़ित करते, तल, ताल कांस्यताल को धीरे से ताड़ित करते, रिगिरिसका लत्तिका, मकरिका और शिशुमारिका का घट्टन करते तथा वंशी, वेणु वाली परिल्ली तथा बद्धकों को फूंकते थे । इस प्रकार वे सभी अपने-अपने वाद्यों को बजा रहे थे ।

इस प्रकार का वह वाद्य सहजरित दिव्य संगीत दिव्य वादन और दिव्य नृत्य आश्चर्यकारी होने से अद्भुत, शृंगाररसोपेत होने से शृंगाररूप, परिपूर्ण गुण-युक्त होने से उदार, दर्शकों के मनोनुकूल होने से मनोज्ञ था कि जिससे वह मनमोहक गीत, मनोहर नृत्य और मनोहर वाद्यवादन सभी के चित्त का आक्षेपक था । दर्शकों के कहकहों के कोलाहल से नाट्यशाला को गूँजा रहा था । इस प्रकार से वे देवकुमार और कुमारिकाएं दिव्य देवक्रीड़ा में प्रवृत्त हो रहे थे । तत्पश्चात् उस दिव्य नृत्यक्रीड़ा में प्रवृत्त उन देवकुमारों और कुमारिकाओं ने श्रमण भगवान महावीर एवं गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण, इन आठ मंगल द्रव्यों का आकार रूप दिव्य नाट्य दिखलाया ।

तत्पश्चात् दूसरी नाट्यविधि दिखाने के लिए वे देवकुमार और देवकुमारियाँ एकत्रित हुईं और दिव्य देवरमण में प्रवृत्त होने पर्यन्त की पूर्वोक्त समस्त वक्तव्यता का वर्णन करना । तदनन्तर उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने श्रमण भगवान महावीर के सामने आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्प, माणवक, वर्ध-मानक, मत्स्यादण्ड, मकराण्डक, जार, मार, पुष्पावलि, पद्मपत्र, सागरतरंग, वासन्तीलता और पद्मलता के आकार की रचनारूप दिव्य नाट्यविधि का अभिनय करके बतलाया । इसी प्रकार से उन देवकुमारों और देवकुमारियों के एक साथ मिलने से लेकर दिव्य देवक्रीड़ा में प्रवृत्त होने तक की समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् ।

तदनन्तर उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने श्रमण भगवान के समक्ष ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, व्याल, किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता और पद्मलता की आकृति-रचना-रूप दिव्य नाट्य-विधि का अभिनय दिखाया । इसके बाद उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने एकतोवक्र, एकतश्चक्रवाल, द्विघात-श्चक्रवाल ऐसी चक्रार्ध-चक्रवाल नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया । इसी प्रकार अनुक्रम से उन्होंने चन्द्रावलि, सूर्यावलि, वलयावलि, हंसावलि, एकावलि, तारावलि, मुक्तावलि, कनकावलि और रत्नावलि की प्रकृष्ट-विशिष्ट रचनाओं से युक्त दिव्य नाट्यविधि का अभिनय प्रदर्शित किया ।

तत्पश्चात् उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने उक्त क्रम से चन्द्रोद्गमप्रविभक्ति, सूर्योद्गमप्रविभक्ति युक्त दिव्य नाट्यविधि को दिखाया । इसके अनन्तर उन्होंने चन्द्रागमन, सूर्यागमन की रचना वाली दिव्य नाट्यविधि का अभिनय किया । तत्पश्चात् चन्द्रावरण, सूर्यावरण, आवरणावरण नामक दिव्य नाट्यविधि को प्रदर्शित किया ।

इसके बाद चन्द्र के अस्त होने, सूर्य के अस्त होने की रचना से युक्त अस्तमयनप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का अभिनय किया । तदनन्तर चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नागमण्डल, यक्षमण्डल, भूतमण्डल, राक्षसमण्डल,

महोरगमण्डल और गन्धर्वमण्डल की रचना से युक्त मण्डलप्रविभक्ति नामक नाट्य अभिनय प्रदर्शित किया । तत्पश्चात् वृषभमण्डल, सिंहमण्डल की ललित गति अश्व गति, और गज की विलम्बित गति, अश्व और हस्ती की विलसित गति, मत्त अश्व और मत्त गज की विलसित गति, मत्त अश्व की विलम्बित गति, मत्त हस्ती की विलम्बित गति से युक्त द्रुतविलम्बित प्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि का प्रदर्शन किया ।

इसके बाद सागर प्रविभक्ति, नगर प्रविभक्ति से युक्त सागर-नागर-प्रविभक्ति नामक अपूर्व नाट्यविधि का अभिनय दिखाया । तत्पश्चात् नन्दाप्रविभक्ति, चम्पा प्रविभक्ति, नन्दा-चम्पा प्रविभक्ति नामक दिव्यनाट्य का अभिनय दिखाया । तत्पश्चात् मत्स्याण्डक, मकराण्डक, जार, मार की आकृतियों की सुरचना से युक्त मत्स्याण्ड-मकराण्ड-जार-मार प्रविभक्ति नामक दिव्यनाट्यविधि दिखलाई ।

तदनन्तर उन देवकुमारों और देवकुमारियों ने क्रमशः ककारप्रविभक्ति, खकार, गकार, धकार और डकार-प्रविभक्ति, इस प्रकार के वर्ग प्रविभक्ति नाम की दिव्य नाट्यविधियों का प्रदर्शन किया । इसी तरह से चकार-छकार-जकार-झकार-ञकार की रचना करके चकारवर्गप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया । पश्चात् क्रमशः ट-ठ-ड-ढ-ण के आकार की सुरचना द्वारा टकारवर्ग-प्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का प्रदर्शन किया । टकारवर्ग के अनन्तर तकार-थकार-दकार-धकार-नकार की रचना करके तकारवर्ग-प्रविभक्ति नामक नाट्यविधि को दिखलाया । तकारवर्ग के अनन्तर प, फ, ब, भ, म के आकार की रचना करके पकारवर्ग-प्रविभक्ति नामकी दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया ।

तत्पश्चात् अशोकपल्लव, आम्रपल्लव, जम्बूपल्लव, कोशाम्रपल्लव, पल्लवप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्य-विधि प्रदर्शित की । तदनन्तर पद्मलता यावत् श्यामलता प्रविभक्ति नामक नाट्याभिनय प्रदर्शित किया । इसके पश्चात् द्रुत, विलम्बित, द्रुतविलम्बित, अंचित, रिभित, अंचितरिभित, आरभट, भसोल और आरभटभसोल नामक नाट्यविधि प्रदर्शित की । तदनन्तर उत्पात निपात, संकुचित-प्रसारित भय और हर्षवश शरीर के अंगोपांगों को सिकोड़ना और फैलाना, भ्रान्त और संभ्रान्त सम्बन्धी क्रियाओं विषयक दिव्य नाट्य-अभिनय दिखाया ।

तदनन्तर वे देवकुमार और देवकुमारियाँ एक साथ एक स्थान पर एकत्रित हुए यावत् दिव्य देवरमत में प्रवृत्त हो गए । तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पूर्व भवों सम्बन्धी चरित्र से निबद्ध एवं वर्तमान जीवन सम्बन्धी, च्यवनचरित्रनिबद्ध, गर्भसंहरणचरित्रनिबद्ध, जन्मचरित्रनिबद्ध, जन्माभिषेक, बालक्रीडानिबद्ध, यौवन-चरित्रनिबद्ध, अभिनिष्क्रमण-निबद्ध, तपश्चरण निबद्ध, ज्ञानोत्पाद चरित्र-निबद्ध, तीर्थ-प्रवर्तन चरित्र से सम्बन्धित, परिनिर्वाण चरित्रनिबद्ध तथा चरम चरित्र निबद्ध नामक अंतिम दिव्य नाट्य-अभिनय का प्रदर्शन किया ।

तत्पश्चात् सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने इन चतुर्विध वादित्रों को बजाया । अनन्तर उन ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मंदक और रोचितावसान रूप चार प्रकार का संगीत गाया । तत्पश्चात् उन ने अंचित, रिभित, आरभट एवं भसोल इन चार प्रकार की नृत्यविधियों को दिखाया । तत्पश्चात् उन ने चार प्रकार के अभिनय प्रदर्शित किये, यथा-दार्ष्टान्तिक, प्रात्यंतिक, सामान्यतोविनिपातनिक और अन्तर्मध्यावसानिक ।

तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों और देवकुमारियों ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव प्रदर्शक बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधियों को दिखाकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् जहाँ अपना अधिपति सूर्याभदेव था वहाँ आए। दोनों हाथ जोड़कर सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभदेव को 'जय विजय' से बधाया और आज्ञा वापस सौंपी ।

सूत्र - २५

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने अपनी सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को समेट लिया और क्षणभर में एकाकी बन गया । इसके बाद सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया । अपने पूर्वोक्त परिवार सहित जिस यान से आया था उसी दिव्य-यान पर आरूढ़

हुआ। जिस दिशा से आया था, उसी ओर लोट गया।

सूत्र - २६

तदनन्तर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। विनयपूर्वक इस प्रकार पूछा-हे भगवन् ! सूर्याभदेव की वह सब पूर्वोक्त दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव कहाँ चला गया ? कहाँ प्रविष्ट हो गया-समा गया ? हे गौतम ! सूर्याभदेव द्वारा रचित वह सब दिव्य देव ऋद्धि आदि उसके शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई।

हे भदन्त ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि शरीर में चली गई, शरीर में अनुप्रविष्ट हो गई ? हे गौतम ! जैसे कोई एक भीतर-बाहर गोबर आदि से लिपी, बाह्य प्राकार-से घिरी हुई, मजबूत किवाड़ों से युक्त गुप्त द्वारवाली निर्वात गहरी, विशाल कूटाकार-शाला हो। उस कूटाकार शाला के निकट एक विशाल जनसमूह बैठा हो। उस समय वह जनसमूह आकाश में एक बहुत बड़े मेघपटल को अथवा प्रचण्ड आँधी को आता हुआ देखे तो जैसे वह कूटाकार शाला के अंदर प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम ! सूर्याभदेव की वह सब दिव्य देवऋद्धि आदि उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई-अन्तर्लीन हो गई है, ऐसा मैंने कहा है।

सूत्र - २७

हे भगवन् ! उस सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान कहाँ पर कहा है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रमणीय समतल भूभाग से ऊपर ऊर्ध्वदिशा में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा-मण्डल से आगे भी ऊंचाई में बहुत से सैकड़ों योजनों, हजारों योजनों, लाखों, करोड़ों योजनों और सैकड़ों करोड़, हजारों करोड़, लाखों करोड़ योजनों, करोड़ों करोड़ योजन को पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्मकल्प नामका कल्प है-वह सौधर्मकल्प पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण विस्तृत है, अर्धचन्द्र के समान, सूर्य किरणों की तरह अपनी द्युति से सदैव चमचमाता, असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन प्रमाण उसकी लम्बाई-चौड़ाई तथा असंख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण उसकी परिधि है। उस सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान बताये हैं। वे सभी विमानावास सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्फटिक मणिवत् स्वच्छ यावत् अतीव मनोहर हैं

उन विमानों के मध्यातिमध्य भाग में-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं में अनुक्रम से अशोक-अवतंसक, सप्तपर्ण-अवतंसक, चंपक-अवतंसक, आम्र-अवतंसक तथा मध्य में सौधर्म-अवतंसक, ये पाँच अवतंसक हैं। ये पाँचों अवतंसक भी रत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उस सौधर्म-अवतंसक महाविमान की पूर्व दिशा में तिरछे असंख्यातम लाख योजन प्रमाण आगे जाने पर आगत स्थान में सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान है। उसका आयाम-विष्कम्भ साढ़े बारह लाख योजन और परिधि उनतालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन है।

वह सूर्याभ विमान चारों दिशाओं में सभी ओर से एक प्राकार से घिरा हुआ है। यह प्राकार तीन सौ योजन ऊंचा है, मूल में इस प्राकार का विष्कम्भ एक सौ योजन, मध्य में पचास योजन और ऊपर पच्चीस योजन है। इस तरह यह प्राकार मूल में चौड़ा, मध्य में संकड़ा और सबसे ऊपर अल्प-पतला होने से गोपुच्छ के आकार जैसा है। यह प्राकार सर्वात्मना रत्नों से बना होने से रत्नमय है, स्फटिकमणि के समान निर्मल है यावत् प्रतिरूप-अतिशय मनोहर है। वह प्राकार अनेक प्रकार के कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत इन पाँच वर्णों वाले कपिशिर्षकों से शोभित है। ये प्रत्येक कपिशिर्षक एक-एक योजन लम्बे, आधे योजन चौड़े और कुछ कम एक योजन ऊंचे हैं तथा ये सब रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् बहुत रमणीय हैं।

सूर्याभदेव के उस विमान की एक-एक बाजू में एक-एक हजार द्वार कहे गए हैं। ये प्रत्येक द्वार पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं, अढ़ाई सौ योजन चौड़े हैं और इतना ही इनका प्रवेशन है। ये सभी द्वार श्वेत वर्ण के हैं। उत्तम स्वर्णमयी स्तूपिकाओं से सुशोभित हैं। उन पर ईहामृग, वृष, अश्व, नर, मकर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ-अष्टापद चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हैं। स्तम्भों पर बनी हुई वज्ररत्नों की वेदिका से

युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ते हैं। समश्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यन्त्र द्वारा चलते हुए-से दीख पड़ते हैं। वे द्वार हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों रूपकों से युक्त होने से दीप्यमान और अतीव देदीप्यमान हैं। देखते ही दर्शकों के नयन उनमें चिपक जाते हैं। उनका स्पर्श सुखप्रद है। रूप शोभासम्पन्न है।

उन द्वारों के नेम वज्ररत्नों से, प्रतिष्ठान रिष्ट रत्नों से-स्तम्भवैदूर्य मणियों से तथा तलभाग स्वर्णजड़ित पंचरंगे मणि रत्नों से बने हुए हैं। इनकी देहलियाँ हंसगर्भ रत्नों की, इन्द्रकीलियाँ गोमेदरत्नों की, द्वारशाखाएं लोहिताक्ष रत्नों की, उत्तरंग ज्योतिरस रत्नों के, दो पाटियों को जोड़ने के लिये ठोकी गई कीलियाँ लोहिताक्षरत्नों की हैं और उनकी सांधे वज्ररत्नों से भरी हुई हैं। समुद्रगक विविध मणियों के हैं। अर्गलाएं अर्गलापाशक वज्ररत्नों के हैं। आवर्तन पीठिकाएं चाँदी की हैं। उत्तरपार्श्वक अंक रत्नों के हैं। इनमें लगे किवाड़ इतने सटे हुए सघन हैं कि बन्द करने पर थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं रहता है। प्रत्येक द्वार की दोनों बाजुओं की भीतों में एक सौ अडसठ भित्तिगुलिकाएं हैं और उतनी ही गोमानसिकाएं हैं-प्रत्येक द्वार पर अनेक प्रकार के मणिरत्नमयी व्यालरूपों पुतलियाँ बनी हुई हैं। उनके माढ़ वज्ररत्नों के और माढ़ के शिखर चाँदी के हैं और द्वारों के ऊपरी भाग स्वर्ण के हैं। द्वारों के जालीदार झरोखे भाँति-भाँति के मणि-रत्नों से बने हुए हैं। मणियों के बांसों का छप्पर है और बांसों को बांधने की खपच्चियाँ लोहिताक्ष रत्नों की हैं। रजतमयी भूमि है। उनकी पांखें और पांखों की बाजुएं अंकरत्नों की हैं। छप्पर के नीचे सीधी और आड़ी लगी हुई वल्लियाँ तथा कवेलू ज्योतितस-रत्नमयी हैं। उनकी पाटियाँ चाँदी की हैं। अवघाटनियाँ स्वर्ण की बनी हुई हैं। ऊपरी प्रोच्छनियाँ वज्ररत्नों की हैं। नीचे के आच्छादन सर्वात्मना श्वेत-धवल और रजतमय हैं। उनके शिखर अंकरत्नों के हैं और उन पर तपनीय-स्वर्ण की स्तूपिकाएं बनी हुई हैं। ये द्वार शंख के समान विमल, दही एवं दुग्धफेन और चाँदी के ढेर जैसी श्वेत प्रभा वाले हैं। उन द्वारों के ऊपरी भाग में तिलकरत्नों से निर्मित अनेक प्रकार के अर्धचन्द्रों के चित्र बने हुए हैं। अनेक प्रकार की मणियों की मालाओं से अलंकृत हैं। वे द्वार अन्दर और बाहर अत्यन्त स्निग्ध और सुकोमल हैं। उनमें सोने के समान पीली बालुका बिछी हुई है। सुखद स्पर्श वाले रूपशोभासम्पन्न, मन को प्रसन्न करने वाले, देखने योग्य, मनोहर और अतीव रमणीय हैं।

सूत्र - २८

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह चन्दन-कलशों की पंक्तियाँ हैं, ये चन्दनकलश श्रेष्ठ उत्तम कमलों पर प्रतिष्ठित हैं, उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए हैं, चन्दन के लेप से चर्चित हैं, उनके कंठों में कलावा बंधा हुआ है और मुख पद्मोत्पल के ढक्कनों से ढंके हुए हैं। ये सभी कलश सर्वात्मना रत्नमय हैं, निर्मल यावत् बृहत् इन्द्रकुंभ जैसे विशाल एवं अतिशय रमणीय हैं। उन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह नागदन्तों की पंक्तियाँ कही हैं। ये नागदन्त मोतियों और सोने की मालाओं में लटकती हुई गवाक्षाकार घुंघरुओं से युक्त, छोटी-छोटी घंटिकाओं से परिवेष्टित हैं। इनका अग्रभाग ऊपर की ओर उठा और दीवार से बाहर निकलता हुआ है एवं पिछला भाग अन्दर दीवार में अच्छी तरह से घुसा हुआ है और आकार सर्प के अधोभाग जैसा है। अग्रभाग का संस्थान सर्पार्ध के समान है। वे वज्ररत्नों से बने हुए हैं। बड़े-बड़े गजदन्तों जैसे ये नागदन्त अतीव स्वच्छ, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

इन नागदन्तों पर काले सूत्र से गूँथी हुई तथा नीले, लाल, पीले और सफेद डोरे से गूँथी हुई लम्बी-लम्बी मालाएं लटक रही हैं। वे मालाएं सोने के झूमकों और सोने के पत्तों से परिमंडित तथा नाना प्रकार के मणि-रत्नों से रचित विविध प्रकार के शोभनीक हारों के अभ्यदय यावत् अपनी श्री से अतीव-अतीव उपशोभित हैं। इन नागदन्तों के भी ऊपर अन्य-दूसरी सोलह-सोलह नागदन्तों की पंक्तियाँ कही हैं। हे आयुष्मन् श्रमणों ! पूर्ववर्णित नागदन्तों की तरह ये नागदन्त भी यावत् विशाल गजदन्तों के समान हैं। इन नागदन्तों पर बहुत से रजतमय शींके लटके हैं। इन प्रत्येक रजतमय शींकों में वैदूर्य-मणियों से बनी हुई धूप-घटिकायें रखी हैं। ये धूपघटिकाएं काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरूपक, तुरुष्क और सुगन्धित धूप के जलने से उत्पन्न मधमघाती मनमोहक सुगन्ध के उड़ने एवं

उत्तम सुरभि-गन्ध की अधिकता से गन्धवर्तिका के जैसी प्रतीत होती हैं तथा सर्वोत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, नासिका और मन को तृप्तिप्रदायक गन्ध से उस प्रदेश को सब तरफ से अधिवासित करती हुई यावत् अपनी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो रही हैं ।

सूत्र - २९

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की निषीधिकाओं में सोलह-सोलह पुतलियों की पंक्तियाँ हैं । ये पुतलियाँ विविध प्रकार की लीलाएं करती हुई, सुप्रतिष्ठित सब प्रकार के आभूषणों से शृंगारित, अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे परिधानों एवं मालाओं से शोभायमान, मुट्टी प्रमाण काटि प्रदेश वाली, शिर पर ऊंचा अंबाडा बांधे हुए और समश्रेणि में स्थित हैं । वे सहवर्ती, अभ्युन्नत, परिपुष्ट, कठोर, भरावदार-स्थूल गोलाकार पयोधरों वाली, लालिमा युक्त नयनान्तभाग वाली, सुकोमल, अतीव निर्मल, शोभनीक सघन घुँघराली काली-काली कजरारी केशराशि वाली, उत्तम अशोक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी हुई और बायें हाथ से अग्र शाखा को पकड़े हुए, अर्ध निमीलित नेत्रों की ईषत् वक्र कटाक्ष-रूप चेष्टाओं द्वारा देवों के मनों को हरण करती हुई-सी और एक दूसरे को देखकर परस्पर खेद-खिन्न होती हुई-सी, पार्थिवपरिणाम होने पर भी शाश्वत विद्यमान, चन्द्रार्धतुल्य ललाट वाली, चन्द्र से भी अधिक सौम्य कांति वाली, उल्का के प्रकाश पूंज की तरह उद्योत वाली विद्युत की चमक एवं सूर्य के देदीप्यमान तेज से भी अधिक प्रकाश, अपनी सुन्दर वेषभूषा से शृंगार रस के गृह-जैसी और मन को प्रसन्न करने वाली यावत् अतीव रमणीय हैं ।

इन द्वारों के दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह जालकटक हैं, ये प्रदेश सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अत्यन्त रमणीय हैं । इन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह घंटाओं की पंक्तियाँ कही गई हैं । वे प्रत्येक घंटे जाम्बूनद स्वर्ण से बने हुए हैं, उनके लोलक वज्ररत्नमय हैं, भीतर और बाहर दोनों बाजुओं में विविध प्रकार के मणि जड़े हैं, लटकाने के लिए बंधी हुई साँकलें सोने की और रस्सियाँ चाँदी की हैं । मेघ की गड़गड़ाहट, हंसस्वर, क्रौंचस्वर, सिंहगर्जना, दुन्दुभिनाद, वाद्यसमूहनिनाद, नन्दिघोष, मंजुस्वर, मंजुघोष, सुस्वर, सुस्वरघोष जैसी ध्वनि वाले वे घंटे अपनी श्रेष्ठ मनोज्ञ, मनोहर कर्ण और मन को प्रिय, सुखकारी झनकारों से उस प्रदेश को चारों ओर से व्याप्त करते हुए अतीव अतीव शोभायमान हो रहे हैं ।

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह वनमालाओं की परिपाटियाँ हैं । ये वनमालाएं अनेक प्रकार की मणियों से निर्मित द्रुमों, पौधों, लताओं, किसलयों और पल्लवों से व्याप्त हैं । मधुपान के लिए बारंबार षटपदों के द्वारा स्पर्श किये जाने से सुशोभित ये वनलताएं मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं । इन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निषीधिकाओं में सोलह-सोलह प्रकंठक हैं ये प्रत्येक प्रकंठक अढ़ाई सौ योजन लम्बे, अढ़ाई सौ योजन चौड़े और सवा सौ योजन मोटे हैं तथा सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव रमणीय हैं ।

उन प्रकण्ठकों के ऊपर एक-एक प्रासादावतंसक है । ये प्रासादावतंसक ऊंचाई में अढ़ाई सौ योजन ऊंचे और सवा सौ योजन चौड़े हैं, चारों दिशाओं में व्याप्त अपनी प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत होते हैं । विविध प्रकार के मणि-रत्नों से इनमें चित्र-विचित्र रचनाएं बनी हुई हैं । वायु से फहराती हुई, विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती-पताकाओं एवं छत्रातिछत्रों से अलंकृत हैं, अत्यन्त ऊंचे होने से इनके शिखर मानो आकाशतल का उल्लंघन करते हैं । विशिष्ट शोभा के लिए जाली-झरोखों में रत्न जड़े हुए हैं । वे रत्न ऐसे चमकते हैं मानों तत्काल पिटारों से नीकाले हुए हों । मणियों और स्वर्ण से इनकी स्तूपिकाएं निर्मित हैं । तथा स्थान-स्थान पर विकसित शतपत्र एवं पुण्डरीक कमलों के चित्र और तिलकरत्नों से रचित अर्धचन्द्र बने हुए हैं । वे नाना प्रकार की मणिमय लताओं से अलंकृत हैं । भीतर और बाहर से चीकने हैं । प्रांगणों में स्वर्णमयी बालुका बिछी हुई है, इनका स्पर्श सुखप्रद है । रूप शोभासम्पन्न है । देखते ही चित्त में प्रसन्नता होती है, वे दर्शनीय हैं । यावत् मुक्तादामों आदि से सुशोभित हैं ।

उन द्वारों के दोनों पार्श्वों में सोलह-सोलह तोरण हैं । वे सभी तोरण नाना प्रकार के मणिरत्नों से बने हुए हैं

तथा विविध प्रकार की मणियों से निर्मित स्तम्भों के ऊपर अच्छी तरह बंधे हैं यावत् पद्म-कमलों के झूमकों-गुच्छों से उपशोभित हैं। उन तोरणों में से प्रत्येक के आगे दो-दो पुतलियाँ स्थित हैं। पुतलियों का वर्णन पूर्ववत्। उन तोरणों के आगे दो-दो नागदन्त हैं। मुक्तादाम पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववर्णित नागदन्तों के समान जानना। उन तोरणों के आगे दो-दो अश्व, गज, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व और वृषभ संघाट हैं। ये सभी रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण रूप-सौन्दर्य वाले हैं। इसी प्रकार से इनकी पंक्ति वीथि और मिथुन स्थित हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो पद्मलताएं यावत् श्यामलताएं हैं। वे सभी लताएं पुष्पों से व्याप्त और रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं। उन तोरणों के अग्रभाग में दो-दो दिशा-स्वस्तिक रखे हैं, जो सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो चन्दनकलश कहे हैं। ये चन्दनकलश श्रेष्ठ कमलों पर स्थापित हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्। उन तोरणों के आगे दो-दो भृंगार हैं। ये भृंगार भी उत्तम कमलों पर रखे हुए हैं यावत् हे आयुष्मन् श्रमणों! मत्त गजराज की मुखाकृति के समान विशाल आकार वाले हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो आदर्श-दर्पण रखे हैं। इनकी पादपीठ सोने की है, प्रतिबिम्ब मण्डल अंकरत्न के हैं और अनघिसे होने पर भी ये दर्पण अपनी स्वाभाविक निर्मल प्रभा से युक्त हैं। चन्द्रमण्डल सरीखे ये निर्मल दर्पण ऊंचाई में कायार्थ जितने बड़े-बड़े हैं।

उन तोरणों के आगे वज्रभय नाभि वाले दो-दो थाल रखे हैं। ये सभी थाल मूशल आदि से तीन बार छोटें गये, शोध गये, अतीव स्वच्छ निर्मल अखण्ड तंदुलों-चावलों से परिपूर्ण-भरे हुए से प्रतिभासित होते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणों! ये थाल जम्बूनद-स्वर्णविशेष-से बने हुए यावत् अतिशय रमणीय और रथ के पहिये जितने विशाल गोल आकार के हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो पात्रियाँ रखी हैं। ये पात्रियाँ स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई हैं और विविध प्रकार के सद्य-ताजे हरे फलों से भरी हुई-सी प्रतिभासित होती हैं। हे आयुष्मन् श्रमणों! ये सभी पात्रियाँ रत्नमयी, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं और इनका आकार बड़े-बड़े गोकलिंजरो के समान गोल हैं। तोरणों के आगे दो दो सुप्रतिष्ठकपात्र विशेष रखे हैं। प्रसाधन-शृंगार की साधनभूत औषधियों आदि से भरे हुए भांडों से सुशोभित हैं और सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो मनोगुलिकाएं हैं। इन पर अनेक सोने और चाँदी के पाटिये जुड़े हुए हैं और उन पर वज्र रत्नमय नागदन्त लगे हैं एवं उन नागदन्तों के ऊपर वज्ररत्नमय छीके टंगे हैं। उन छीकों पर काले, नीले, लाल, पीले और सफेद सूत के जालीदार वस्त्र खण्ड से ढँके हुए वातकरक रखे हैं। ये सभी वातकरक वज्ररत्नमय, स्वच्छ यावत् अतिशय सुन्दर हैं। उन तोरणों के आगे चित्रामों से युक्त दो-दो (रत्नकरंडक) रखे हैं। जिस तरह चातुरंत चक्रवर्ती राजा का वैदूर्यमणि से बना एवं स्फटिक मणि के पटल से आच्छादित अद्भूत-आश्चर्यजनक रत्न-करंडक अपनी प्रभा से उस प्रदेश को पूरी तरह से प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, उसी प्रकार ये रत्नकरंडक भी अपनी प्रभा से अपने निकटवर्ती प्रदेश को सर्वात्मना प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करते हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो अश्वकंठ, गजकंठ, नरकंठ, किन्नरकंठ, किंपुरुषकंठ, महोरगकंठ, गंधर्वकंठ और वृषभकंठ रखे हैं। ये सब सर्वथा रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो पुष्प-चंगेरिकाएं माल्यचंगेरिकाएं, चूर्ण चंगेरिकाएं, गन्ध चंगेरिकाएं, वस्त्र चंगेरिकाएं, आभरण चंगेरिकाएं, सिद्धार्थ की चंगेरिकाएं एवं लोमहस्त चंगेरिकाएं रखीं हैं। ये सभी रत्नों से बनी हुई, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो पुष्पपटलक यावत् मयूर पिच्छपटलक रखे हैं। ये सब भी पटलक रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो सिंहासन हैं। इन सिंहासनों का वर्णन मुक्तादामपर्यन्त पूर्ववत्। उन तोरणों के आगे रजतमय दो-दो छत्र हैं। इन छत्रों के दण्ड विमल वैदूर्यमणियों के हैं, कर्णिकाएं सोने की हैं, संधियाँ वज्र की हैं, मोती पिरोई हुई आठ हजार सोने की सलाइर्या हैं तथा दहर चन्दन और सभी ऋतुओं के पुष्पों की सुरभि से

युक्त शीतल कान्ति वाले हैं। इन पर मंगलरूप स्वस्तिक आदि के चित्र बने हैं। इनका आकार चन्द्रमण्डलवत् गोल है। उन तोरणों के आगे दो-दो चामर हैं। इन चामरों की डंडियाँ चन्द्रकांत वैडूर्य और वज्र रत्नों की हैं और उन पर अनेक प्रकार के मणि-रत्नों द्वारा विविध चित्र-विचित्र रचनाएं बनी हैं, शंख, अंकरत्न, कुंदपुष्प, जलकण और मथित क्षीरोदधि के फेनपुंज सदृश श्वेत-धवल इनके पतले लम्बे बाल हैं। ये सभी चामर सर्वथा रत्नमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो तेलसमुद्गक, कोष्ठ समुद्गक, पत्र समुद्गक, चोयसमुद्गक, तगर-समुद्गक, एला समुद्गक, हरतालसमुद्गक, हिंगलकसमुद्गक, मैनमिलसमुद्गक, अंजनसमुद्गक रखे हैं। ये सभी समुद्गक रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

सूत्र - ३०

सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार के ऊपर चक्र, मृग, गरुड़, छत्र, मयूरपिच्छ, पक्षी, सिंह, वृषभ, चार दाँत वाले श्वेत हाथी और उत्तम नाग के चित्र से अंकित एक सौ आठ ध्वजाएं फहरा रही हैं। इस तरह सब मिलाकर एक हजार अस्सी ध्वजाएं उस सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार पर फहरा रही हैं—ऐसा तीर्थकर भगवंतों ने कहा है। उन द्वारों के एक-एक द्वार पर पैसठ-पैसठ भौम बताए हैं। यान विमान की तरह ही इन भौमों के समरमणीय भूमि भाग और उल्लोक का वर्णन करना। इन भौमों के बीचों-बीच एक-एक सिंहासन रखा है। यानविमानवर्ती सिंहासन की तरह उसका सपरिवार वर्णन समझना। शेष आसपास के भौमों में भद्रासन रखे हैं।

उन द्वारों के ओतरंग सोलह प्रकार के रत्नों से उपशोभित हैं। उन रत्नों के नाम इस प्रकार हैं—कर्कतनरत्न यावत् रिष्टरत्न। उन द्वारों के ऊपर ध्वजाओं यावत् छत्रातिछत्रों से शोभित स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगल हैं। इस प्रकार सूर्याभ विमान में सब मिलकर चार हजार द्वार सुशोभित हो रहे हैं।

उन सूर्याभविमान के चारों ओर पाँच सौ-पाँच सौ योजन के अन्तर पर चार दिशाओं में अशोकवन, सप्त-पर्णवन, पंचकवन और आम्रवन नामक चार वनखण्ड हैं। पूर्व दिशा में अशोकवन, दक्षिण दिशा में सप्तपर्ण वन, पश्चिम में पंचकवन और उत्तर में आम्रवन है। ये प्रत्येक वनखण्ड साढ़े बारह लाख योजन से कुछ अधिक लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं। प्रत्येक वनखण्ड एक-एक परकोटे से परिवेष्टित है। ये सभी वनखण्ड अत्यन्त घने होने के कारण काले और काली आभा वाले, नीले और नील आभा वाले, हर और हरी कांतिवाले, शीत स्पर्श और शीत आभाववाले, स्निग्ध और कमनीय कांतिवाले, तीव्र प्रभाववाले तथा काले और काली छायावाले, नीले और नीली छायावाले, हरे और हरी छायावाले, शीतल और शीतल छायावाले, स्निग्ध और स्निग्ध छायावाले हैं एवं वृक्षों की शाखा-प्रशाखाएं आपसमें एक दूसरी से मिली होने के कारण अपनी सघन छाया से बड़े ही रमणीय तथा महामेघों के समुदाय जैसे सुहावने दिखते हैं। इन वनखण्डोंके वृक्ष जमीनके भीतर गहरी फैली हुई जड़ों से युक्त हैं

इन वनखण्डों के वृक्ष जमीन के अन्दर विस्तृत गहरे फैले हुए मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रशाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज से युक्त हैं। छतरी के समान इनका रमणीय गोल आकार है। इनके स्कन्ध ऊपर की ओर उठी हुई अनेक शाखा-प्रशाखाओं से शोभित हैं और इतने विशाल एवं वृत्ताकार हैं कि अनेक पुरुष मिलकर भी अपने फैलाये हुए हाथों से उन्हें घेर नहीं पाते। पत्ते इतने घने हैं कि बीच में जरा भी दिखलाई नहीं देता है। पत्र-पल्लव सदैव नवीन जैसे दिखते हैं। कोपलें अत्यन्त कोमल हैं और सदैव सर्व ऋतुओं के पुष्पों से व्याप्त हैं तथा नमिक्त, विशेष नमिक्त, पुष्पित, पल्लवित, गुल्मित, गुच्छित, विनमित प्रणमित होकर मंजरी रूप शिरोभूषणों से अलंकृत रहते हैं। तोता, मयूर, मैना, कोयल, नंदीमुख, तीतर, बटेर, चक्रवाल, कलहंस, बतक, सारस आदि अनेक पक्षि-युगलों के मधुर स्वरो से गूँजते रहते हैं। अनेक प्रकार के गुच्छों और गुल्मों से निर्मित मंडप आदि से सुशोभित हैं। नासिका और मन को तृप्ति देने वाली सुगंध से महकते रहते हैं। इस प्रकार ये सभी वृक्ष सुरम्य, प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप-मनोहर एवं प्रतिरूप हैं।

सूत्र - ३१

उन वनखण्डों के मध्य में अति सम रमणीय भूमिभाग है। वे-मैदान आलिंग पुष्कर आदि के सदृश समतल

यावत् नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पंचरंगे मणियों और तृणों से उपशोभित हैं । इन मणियों के गंध और स्पर्श यथाक्रम से पूर्व में किये गये मणियों के गंध और स्पर्श के वर्णन समान जानना । हे भदन्त ! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से आये वायु के स्पर्श से मंद-मंद हिलने-डुलने, कंपने, डगमगाने, फरकने, टकराने, क्षुभित और उदीरित होने पर उन तृणों और मणियों की कैसी शब्द-ध्वनि होती है ?

हे गौतम ! जिस तरह शिबिका अथवा स्यन्दमानिका अथवा रथ, जो छत्र, ध्वजा, घंटा, पताका और उत्तम तोरणों से सुशोभित, वाद्यसमूहवत् शब्द-निनाद करने वाले घुँघरुओं एवं स्वर्णमयी मालाओं से परिवेष्टित हो, हिमालय में उत्पन्न अति निगड़-सारभूत उत्तम तिनिश काष्ठ से निर्मित एवं सुव्यवस्थित रीति से लगाए गए आरोहों से युक्त पहियों और धुरा से सुसज्जित हो, सुदृढ़ उत्तम लोहे के पट्टों से सुरभिक्षित पट्टियों वाले, शुभलक्षणों और गुणों से युक्त कुलीन अश्व जिसमें जुते हों जो रथ-संचालन-विद्या में अति कुशल, दक्ष सारथी द्वारा संचालित हो, एक सौ-एक सौ वाण वाले, बत्तीस तूणीरों से परिमंडित हो, कवच से आच्छादित अग्र-शिखरभाग वाला हो, धनुष बाण, प्रहरण, कवच आदि युद्धोपकरणों से भरा हो, और युद्ध के लिए तत्पर-सन्नद्ध योद्धाओं के लिए सजाया गया हो, ऐसा रथ बारंबार मणियों और रत्नों से बनाए गए-फर्श वाले राजप्रांगण, अंतःपुर अथवा रमणीय प्रदेश में आवागमन करे तो सभी दिशा-विदिशा में चारों ओर उत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, कान और मन को आनन्द-कारक मधुर शब्द-ध्वनि फैलती है । हे भदन्त ! क्या इन रथादिकों की ध्वनि जैसी ही उन तृणों और मणियों की ध्वनि है ? गौतम ! नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भदन्त ! क्या उन मणियों और तृणों की ध्वनि ऐसी है जैसी की मध्यरात्रि अथवा रात्रि के अन्तिम प्रहर में वादनकुशल नर या नारी द्वारा अंक-गोद में लेकर चंदन के सार भाग से रचित कोण के स्पर्श से उत्तर-मन्द मूर्च्छना वाली वैतालिक वीणा को मन्द-मन्द ताड़ित, कंपित, प्रकंपित, चालित, घर्षित, क्षुभित और उदीरित किये जाने पर सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर उदार, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, कर्णप्रिय एवं मनमोहक ध्वनि गूँजती है ? गौतम ! नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! तो क्या उनकी ध्वनि इस प्रकार की है, जैसे कि भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन अथवा पांडुक वन या हिमवन, मलय अथवा मंदरगिरि की गुफाओं में गये हुए एवं एक स्थान पर एकत्रित, समागत, बैठे हुए और अपने-अपने समूह के साथ उपस्थित, हर्षोल्लास पूर्वक क्रीड़ा करने में तत्पर, संगीत-नृत्य-नाटक-हासपरिहासप्रिय किन्नरों, किंपुरुषों, महोरगों अथवा गंधर्वों के गद्यमय-पद्यमय, कथनीय, गेय, पद-बद्ध, पादबद्ध, उत्क्षिप्त, पादान्त, मन्द-मन्द घोलनात्मक, रोचितावसान-सुखान्त, मनमोहक सप्त स्वरों से समन्वित, षड्दोषों से रहित, ग्यारह अलंकारों और आठ गुणों से युक्त गुंजारव से दूर-दूर के कोनों-क्षेत्रों को व्याप्त करने वाले राग-रागिनी से युक्त त्रि-स्थानकरण शुद्ध गीतों के मधुर बोल होते हैं ? हे गौतम ! हाँ, ऐसी ही मधुरातिमधुर ध्वनि उन मणियों और तृणों से निकलती है ।

सूत्र - ३२

उन वनखण्डों में जहाँ-तहाँ स्थान-स्थान पर अनेक छोटी-छोटी चौरस वापिकाएं-बावड़ियाँ, गोल पुष्करिणियाँ, दीर्घिकाएं, गुंजालिकाएं, फूलों से ढंकी हुई सरोवरों की पंक्तियाँ, सर-सर पंक्तियाँ एवं कूपपंक्तियाँ बनी हुई हैं । इन सभी वापिकाओं आदि का बाहरी भाग स्फटिमणिवत् अतीव निर्मल, स्निग्ध है । इनके तट रजतमय हैं और तटवर्ती भाग अत्यन्त सम-चौरस हैं । ये सभी जलाशय वज्ररत्न रूपी पाषाणों से बने हुए हैं । इनके तलभाग तपनीय स्वर्ण से निर्मित हैं तथा उन पर शुद्ध स्वर्ण और चाँदी की बालू बिछी है । तटों के समीपवर्ती ऊंचे प्रदेश वैडूर्य और स्फटिक-मणि-पटलों के बने हैं । इनमें उतरने और नीकलने के स्थान सुखकारी हैं । घाटों पर अनेक प्रकार की मणियाँ जुड़ी हुई हैं । चार कोने वाली वापिकाओं और कुंओं में अनुक्रम से नीचे-नीचे पानी अगाध एवं शीतल है तथा कमलपत्र, बिस और मृणालों से ढँका हुआ है । ये सभी जलाशय विकसित उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुंडरीक, शतपत्र तथा सहस्र-पत्र कमलों से सुशोभित हैं और उन पर परागपान के

लिए भ्रमरसमूह गूँज रहे हैं। स्वच्छ-निर्मल जल से भरे हुए हैं। कल्लोल करते हुए मगरमच्छ कछुआ आदि बेरोक-टोक इधर-उधर घूम फिर रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षिसमूहों के गमनागमन से सदा व्याप्त रहते हैं।

ये सभी जलाशय एक-एक पद्मवरवेदिका और एक-एक वनखण्ड से परिवेष्टित हैं। इन जलाशयों में से किसी में आसव, किसी में वरुणोदक, किसी में क्षीरोदक, किसी में घी, किसी में इक्षुरस और किसी-किसी में प्राकृतिक पानी जैसा पानी भरा है। ये सभी जलाशय मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। उन प्रत्येक वापिकाओं यावत् कूपपंक्तियों की चारों दिशाओं में तीन-तीन सुन्दर सोपान बने हुए हैं। उन त्रिसोपान प्रतिरूपकों की नेमें वज्ररत्नों की हैं इत्यादि तोरणों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववत् समझना।

उन छोटी-छोटी वापिकाओं यावत् कूपपंक्तियों के मध्यवर्ती प्रदेशों में बहुत से उत्पातपर्वत, नियतिपर्वत, जगतीपर्वत, दारुपर्वत तथा कितने ही ऊंचे-नीचे, छोटे-बड़े दकमंडप, दकमंच, दकमालक, दकप्रासाद बने हुए हैं तथा कहीं-कहीं पर मनुष्यों और पक्षियों को झूलने के लिए झूले-हिंडोले पड़े हैं। ये सभी पर्वत आदि सर्वरत्नमय अत्यन्त निर्मल यावत् असाधारण रूप से सम्पन्न हैं। उन उत्पात पर्वतों, पक्षिहिंडोलों आदि पर सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव मनोहर अनेक हंसासन, क्रौंचासन, गरुड़ासन, उन्नतासन, प्रणतासन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशास्वस्तिक आसन रखे हुए हैं।

उन वनखण्डों में यथायोग्य स्थानों पर बहुत से आलिगृह, मालिगृह, कदलीगृह, लतागृह, आसनगृह, प्रेक्षा गृह, मज्जनगृह, प्रसाधनगृह, गर्भगृह, मोहनगृह, शालागृह, जाली वाले गृह, कुसुमगृह, चित्रगृह, गंधर्वगृह, आदर्श-गृह से सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी गृह रत्नों से बने हुए अधिकाधिक निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं। उन आलिगृहों यावत् आदर्शगृहों में सर्वरत्नमय यावत् अतीव मनोहर हंसासन यावत् दिशा-स्वस्तिक आसन रखे हैं। उन वनखण्डों में विभिन्न स्थानों पर बहुत से जातिमंडप, यूथिकामंडप, मल्लिकामंडप, नवमल्लिकामंडप, वासंती मंडप, दधिवासुका मंडप, सुरिल्लि मंडप, नागरवेल मंडप, मृद्धीका मंडप, नागलता मंडप, अतिमुक्तक अप्फोया मंडप और मालुका मंडप बने हुए हैं। ये सभी मंडप अत्यन्त निर्मल, सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणों ! उन जातिमंडपों यावत् मालुकामंडपों में कितने ही हंसासन, क्रौंचासन, गरुड़ासन, उन्नतासन, प्रणतासन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन, दिशा स्वस्तिकासन जैसे आकार वाले पृथ्वीशिलापट्टक तथा दूसरे भी बहुत से श्रेष्ठ शयनासन सदृश विशिष्ट आकार वाले पृथ्वीशिला-पट्टक रखे हुए हैं। ये सभी पृथ्वीशिलापट्टक वस्त्र, रूई, बूर, नवनीत, तूल, सेमल या आक की रूई के स्पर्श जैसे सुकोमल, कमनीय, सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव रमणीय हैं। उन हंसासनों आदि पर बहुत से सूर्याभविमान-वासी देव और देवियाँ सुखपूर्वक बैठते हैं, सोते हैं, शरीर को लम्बा कर लेटते हैं, विश्राम करते हैं, ठहरते हैं, करवट लेते हैं, रमण करते हैं, केलिक्रीड़ा करते हैं, ईच्छानुसार भोग-विलास भोगते हैं, मनोविनोद करते हैं, रासलीला करते हैं और रतिक्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार वे अपने-अपने सुपुरुषार्थ से पूर्वोपार्जित शुभ, कल्याणमय शुभफलप्रद, मंगलरूप पुण्य कर्मों के कल्याणरूप फलविपाक का अनुभव करते हुए समय बिताते हैं

सूत्र - ३३

उन वनखण्डों के मध्यातिमध्य भाग में एक-एक प्रासादावतंसक हैं। ये प्रासादावतंसक पाँच सौ योजन ऊंचे और अढ़ाई सौ योजन चौड़े हैं और अपनी उज्ज्वल प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत होते हैं। इनका भूमिभाग अतिसम एवं रमणीय है। इनके चंदेवा, सामानिक आदि देवों के भद्रासनों सहित सिंहासन आदि का वर्णन पूर्ववत् इन प्रासादावतंसकों में महान ऋद्धिशाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव निवास करते हैं। अशोक देव, सप्तपर्ण देव, चंपक देव और आम्र देव।

सूर्याभ नामक देवविमान के अंदर अत्यन्त समतल एवं अतीव रमणीय भूमिभाग है। शेष बहुत से वैमानिक देव और देवियों के बैठने से विचरण करने तक का वर्णन पूर्ववत्। किन्तु वहाँ वनखण्ड का वर्णन छोड़

देना । उस अतीव सम रमणीय भूमिभाग के बीचों-बीच एक उपकारिकालयन बना हुआ है । जो एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है और उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल है । एक योजन मोटाई है । यह विशाल लयन सर्वात्मना स्वर्ण का बना हुआ, निर्मल यावत् प्रतिरूप है ।

सूत्र - ३४

वह उपकारिकालयन सभी दिशा-विदिशाओं में एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से घिरा हुआ है । वह पद्मवरवेदिका ऊंचाई में आधे योजन ऊंची, पाँच सौ धनुष चौड़ी और उपकारिकालयन जितनी इसकी परिधि है । जैसे कि वज्ररत्नमय इसकी नेम है । रिष्टरत्नमय प्रतिष्ठान है । वैदूर्यरत्नमय स्तम्भ है । स्वर्ण और रजतमय फलक है । लोहिताक्ष रत्नों से बनी इसकी सूचियाँ हैं । विविध मणिरत्नमय इसका कलेवर है तथा विविध प्रकार की मणियों से बना हुआ है । अनेक प्रकार के मणि-रत्नों से इस पर चित्र बने हैं । नानामणि-रत्नों से इसमें रूपक संघात, चित्रों आदि के समूह बने हैं । अंक रत्नमय इसके पक्ष और पक्षबाहा हैं । ज्योतिरस रत्नमय इसके वंश, वला और वंशकवेल्लुक है । रजतमय इनकी पट्टियाँ हैं । स्वर्णमयी अवघाटनियाँ और वज्ररत्नमयी उपरिप्रोच्छनी हैं । सर्वरत्नमय आच्छादन है । वह पद्मवरवेदिका सभी दिशा-विदिशाओं में चारों ओर से एक-एक हेमजाल से जाल से, किंकणी घंटिका, मोती, मणि, कनक रत्न और पद्म की लम्बी-लम्बी मालाओं से परिवेष्टित है । ये सभी मालाएं सोने के लंबूसकों आदि से अलंकृत हैं । उस पद्मवरवेदिका के यथायोग्य उन-उन स्थानों पर अश्वसंघात यावत् वृषभयुगल सुशोभित हो रहे हैं । ये सभी सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल यावत् प्रतिरूप, प्रासादिक हैं यावत् इसी प्रकार इनकी वीथियाँ, पंक्तियाँ, मिथुन एवं लताएं हैं ।

हे भदन्त ! किस कारण कहा जाता है कि यह पद्मवरवेदिका है, पद्मवरवेदिका है ? भगवान् ने कहा- हे गौतम ! पद्मवरवेदिका के आस-पास की भूमि में, वेदिका के फलकों में, वेदिकायुगल के अन्तरालों में, स्तम्भों, स्तम्भों की बाजुओं, स्तम्भों के शिखरों, स्तम्भयुगल के अन्तरालों, कीलियों, कीलियों के ऊपरी भागों, कीलियों से जुड़े हुए फलकों, कीलियों के अन्तरालों, पक्षों, पक्षों के प्रान्त भागों और उनके अन्तरालों आदि-आदि में वर्षाकाल के बरसते मेघों से बचाव करने के लिए छत्राकार-जैसे अनेक प्रकार के बड़े-बड़े विकसित, सर्वरत्नमय स्वच्छ, निर्मल, अतीव सुन्दर, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक पुडरीक, महापुंडरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमल शोभित हो रहे हैं । इसीलिए हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! इस पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहते हैं ।

हे भदन्त ! वह पद्मवरवेदिका शाश्वत है अथवा अशाश्वत ? हे गौतम ! शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है । भगवन् ! किस कारण आप ऐसा कहते हैं ? हे गौतम ! द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा वह शाश्वत है परन्तु वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है । इसी कारण हे गौतम ! यह कहा है । हे भदन्त ! काल की अपेक्षा वह पद्मवरवेदिका कितने काल पर्यन्त रहेगी ? हे गौतम ! वह पद्मवरवेदिका पहले कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, अभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और आगे नहीं रहेगी ऐसा भी नहीं है, किन्तु पहले भी थी, अब भी है और आगे भी रहेगी । इस प्रकार वह पद्मवरवेदिका ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है ।

वह पद्मवरवेदिका चारों ओर एक वनखण्ड से परिवेष्टित है । उस वनखण्ड का चक्रवालविष्कम्भ कुछ कम दो योजन प्रमाण है तथा उपकारिकालयन की परिधि जितनी उसकी परिधि है । वहाँ देव-देवियाँ विचरण करती हैं, यहाँ तक वनखण्ड का वर्णन पूर्ववत् कर लेना । उस उपकारिकालयन की चारों दिशाओं में चार त्रिसोपानप्रति-रूपक बने हैं । यान विमान के सोपानों के समान इन त्रिसोपान-प्रतिरूपकों का वर्णन भी तोरणों, ध्वजाओं, छत्रातिछत्रों आदि पर्यन्त यहाँ करना । उन उपकारिकालयन के ऊपर अतिसम, रमणीय भूमिभाग है । यानविमान-वत् मणियों के स्पर्शपर्यन्त इस भूमिभाग का वर्णन यहाँ करना ।

सूत्र - ३५

इस अतिसम रमणीय भूमिभाग के अतिमध्यदेश में एक विशाल मूल प्रासादावतंसक है । वह प्रासादाव-

तंसक पाँच सौ योजन ऊंचा और अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है तथा अपनी फैल रही प्रभा से हँसता हुआ प्रतीत होता है, उस प्रासाद के भीतर के भूमिभाग, उल्लोक, भद्रासनों, आठ मंगल, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों का यहाँ कथन करना । वह प्रधान प्रासादावतंसक सभी चारों दिशाओं में ऊंचाई में अपने से आधे ऊंचे अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित है । ये चारों प्रासादावतंसक ढाई सौ योजन ऊंचे और चौड़ाई में सवा सौ योजन चौड़े हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् । ये चारों प्रासादावतंसक भी पुनः चारों दिशाओं में अपनी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से घिरे हैं । ये प्रासादावतंसक एक सौ पच्चीस योजन ऊंचे और साढ़े बासठ योजन चौड़े हैं तथा ये चारों ओर फैल रही प्रभा से हँसते हुए-से दिखते हैं, यहाँ से लेकर भूमिभाग, चंदेवा, सपरिवार सिंहासन, आठ-आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्रा-तिछत्रों से सुशोभित हैं, पर्यन्त इनका वर्णन करना । ये प्रासादावतंसक भी चारों दिशाओं में अपनी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित हैं । ये प्रासादावतंसक साढ़े बासठ योजन ऊंचे और इकतीस योजन एक कौस चौड़े हैं । इन प्रासादों के भूमिभाग, चंदेवा, सपरिवार सिंहासन, ऊपर आठ मंगल, ध्वजाओं छत्रातिछत्रों आदि का वर्णन भी पूर्ववत् ।

सूत्र - ३६

उस प्रधान प्रासाद के ईशान कोण में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और बहत्तर योजन ऊंची सुधर्मा नामक सभा है । यह सभा अनेक सैकड़ों खम्भों पर सन्निविष्ट यावत् अप्सराओं से व्याप्त अतीव मनोहर हैं । इस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में और उत्तर दिशा में । ये द्वार ऊंचाई में सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश मार्ग वाले हैं । वे द्वार श्वेत वर्ण के हैं । श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित शिखरों एवं वनमालाओं से अलंकृत हैं, आदि वर्णन पूर्ववत् ।

उन द्वारों के आगे सामने एक-एक मुखमंडप है । ये मंडप नौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और ऊंचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे हैं । सुधर्मा सभा के समान इनका शेष वर्णन करना । इन मंडपों की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं, यथा-एक पूर्व में, एक दक्षिण में और एक उत्तर में । ये द्वार ऊंचाई में सोलह योजन ऊंचे हैं, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेशमार्ग वाले हैं । ये द्वार श्वेत धवलवर्ण और श्रेष्ठ स्वर्ण से बनी शिखरों, वनमालाओं से अलंकृत हैं, पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् । उन मुखमंडपों में से प्रत्येक के आगे प्रेक्षागृहमंडप बने हैं । इन मंडपों के द्वार, भूमिभाग, चाँदनी आदि का वर्णन मुखमंडपों की वक्तव्यता के समान जानना ।

उन प्रेक्षागृह मंडपों के अतीव रमणीय समचौरस भूमिभाग के मध्यातिमध्य देश में एक-एक वज्ररत्नमय अक्षपाटक-मंच कहा गया है । उन वज्ररत्नमय अक्षपाटकों के भी बीचों-बीच आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और विविध प्रकार के मणिरत्नों से निर्मित निर्मल यावत् प्रतिरूप एक-एक मणिपीठिकाएं बनी हुई हैं । उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक सिंहासन रखा है । भद्रासनों आदि आसनों रूपि परिवार सहित उन सिंहासनों का वर्णन करना । उन प्रेक्षागृह मंडपों ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं, छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं

उन प्रेक्षागृह मंडपों के आगे एक-एक मणिपीठिका है । ये मणिपीठिकाएं सोलह-सोलह योजन लम्बी-चौड़ी आठ योजन मोटी है । ये सभी सर्वात्मना मणिरत्नमय, स्फटिक मणि के समान निर्मल और प्रतिरूप हैं । उन प्रत्येक मणिपीठों के ऊपर सोलह-सोलह योजन लम्बे-चौड़े समचौरस और ऊंचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे, शंख, अंकरत्न, यावत् सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्वच्छ यावत् असाधारण रमणीय स्तूप बने हैं । उन स्तूपों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं छत्रातिछत्र यावत् सहस्रपत्र कमलों के झूमके सुशोभित हो रहे हैं । उन स्तूपों की चारों दिशाओं में एक-एक मणिपीठिका है । ये आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और अनेक प्रकारके मणिरत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं । प्रत्येक मणिपीठिका ऊपर, जिनका मुख स्तूपों के सामने है ऐसी जिनोत्सेध प्रमाण चार जिन-प्रतिमाएं पर्यकासनसे बिराजमान हैं- ऋषभ, वर्धमान, चन्द्रानन, वारिषेण की

उन प्रत्येक स्तूपों के आगे-सामने मणिमयी पीठिकायें बनी हुई हैं । ये मणिपीठिकाएं सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी और सर्वात्मना मणिरत्नों से निर्मित, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं । उन मणिपीठिकाओं

के ऊपर एक-एक चैत्यवृक्ष है। ये सभी चैत्यवृक्ष ऊंचाई में आठ योजन ऊंचे, जमीन के भीतर आधे योजन गहरे हैं। इनका स्कन्ध भाग दो योजन का और आधा योजन चौड़ा है। स्कन्ध से नीकलकर ऊपर की ओर फैली हुई शाखाएं छ योजन ऊंची और लम्बाई-चौड़ाई में आठ योजन है। कुल मिलाकर इनका सर्वपरिमाण कुछ अधिक आठ योजन है। इन वृक्षों के मूल वज्ररत्नों के हैं, विडिमाएं रजत की, कंद रिष्टरत्नों के, मनोरम स्कन्ध वैडूर्यमणि के, मूलभूत प्रथम विशाल शाखाएं शोभनीक श्रेष्ठ स्वर्ण की, विविध शाखा-प्रशाखाएं नाना प्रकार के मणि-रत्नों की, पत्ते वैडूर्यरत्न के, पत्तों के वृन्त स्वर्ण के, अरुणमृदु-सुकोमल-श्रेष्ठ प्रवाल, पल्लव एवं अंकुर जाम्बूनद (स्वर्ण विशेष) के हैं और विचित्र मणिरत्नों एवं सुरभिगंध-युक्त पुष्प-फलों के भार से नमित शाखाओं एवं अमृत के समान मधुररस युक्त फलवाले ये वृक्ष सुंदर मनोरम छाया, प्रभा, कांति, शोभा, उद्योत से संपन्न नयन-मन को शांतिदायक एवं प्रासादिक हैं। उन चैत्यवृक्षों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

उन प्रत्येक चैत्यवृक्षों के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकाएं आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक माहेन्द्रध्वज फहरा रहा है। ये माहेन्द्रध्वज साठ योजन ऊंचे, आधा कोस जमीन के भीतर ऊंडे, आधा कोस चौड़े, वज्ररत्नों से निर्मित, दीप्तिमान, चीकने, कमनीय, मनोज्ञ वर्तुलाकार शेष ध्वजाओं से विशिष्ट, अन्यान्य हजारों छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की मनोरम रंग-बिरंगी पताकाओं से परिमंडित, वायुवेग से फहराती हुई विजय-वैजयन्ती पताका, छत्रातिछत्र से युक्त आकाशमंडल को स्पर्श करने वाले ऐसे ऊंचे उपरिभागों से अलंकृत, मन को प्रसन्न करने वाले हैं। इन माहेन्द्र-ध्वजों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

उन माहेन्द्रध्वजों के आगे एक-एक नन्दा नामक पुष्करिणी बनी हुई है। सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, दस योजन ऊंडी है और स्वच्छनिर्मल है आदि वर्णन पूर्ववत्। इनमें से कितनेक का पानी स्वाभाविक पानी जैसा मधुर रस वाला है। ये प्रत्येक नन्दा पुष्करिणियाँ एक-एक पद्मवर-वेदिका और वनखण्डों से घिरी हुई है। इन नन्दा पुष्करिणियों की तीन दिशाओं में अतीव मनोहर त्रिसोपान-पंक्तियाँ हैं। इन के ऊपर तोरण, ध्वजाएं, छत्राति-छत्र सुशोभित हैं आदि वर्णन पूर्ववत्।

सुधर्मासभा में अड़तालीस हजार मनोगुलिकाएं हैं, वे इस प्रकार हैं - पूर्व-पश्चिम में सोलह-सोलह हजार और दक्षिण-उत्तर में आठ-आठ हजार। उन मनोगुलिकाओं के ऊपर अनेक स्वर्ण एवं रजतमय फलक और उन स्वर्ण रजतमय पाटियों पर अनेक वज्ररत्नमय नागदंत लगे हैं। उन वज्रमय नागदंतों पर काले सूत से बनी हुई गोल लम्बी-लम्बी मालाएं लटक रही हैं। सुधर्मा सभा में अड़तालीस हजार गोमानसिकाएं रखी हुई हैं। नागनन्दों पर्यन्त इनका वर्णन मनोगुलिकाओं के समान समझना।

उन नागदंतों के ऊपर बहुत से रजतमय शींके लटके हैं। उन रजतमय शींकों में बहुत-से वैडूर्य रत्नों से बनी हुई धूपघटिकाएं रखी हैं। वे धूपघटिकाएं काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क आदि की सुगंध से मन को मोहित कर रही हैं। उस सुधर्मा सभा के भीतर अत्यन्त रमणीय सम भूभाग है। वह भूमिभाग यावत् मणियों से उपशोभित है आदि मणियों के स्पर्श एवं चंदवा पर्यन्त का सब वर्णन पूर्ववत्। उन अति सम रमणीय भूमिभाग के अति मध्यदेश में एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। जो आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा सोलह योजन लम्बी-चौड़ी और आठ योजन मोटी तथा सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई यावत् प्रतिरूप हैं।

उन मणिपीठिका के ऊपर एक माणवक नामक चैत्यस्तम्भ है। वह ऊंचाई में साठ योजन ऊंचा, एक योजन जमीन के अंदर गहरा, एक योजन चौड़ा और अड़तालीस कोनों, अड़तालीस धारों और अड़तालीस आयामोंवाला है। शेष वर्णन माहेन्द्रध्वज जैसा जानना। उस माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपरी भाग में बारह योजन और नीचे बारह योजन छोड़कर मध्य के शेष छत्तीस योजन प्रमाण भाग में अनेक स्वर्ण और रजतमय फलक लगे हुए हैं। उन स्वर्ण-रजतमय फलकों पर अनेक वज्रमय नागदंत हैं। उन वज्रमय नागदंतों पर बहुत से रजतमय शींके लटक रहे हैं। उन रजतमय शींकों में वज्रमय गोल गोल समुद्गक रखे हैं। उन गोल-गोल वज्ररत्नमय समुद्-

गर्कोंमें बहुत-सी जिन-अस्थियाँ सुरक्षित रखी हुई हैं। वे अस्थियाँ सूर्याभदेव एवं अन्य देव-देवियों के लिए अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं। उस माणवक चैत्य के ऊपर आठ आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

सूत्र - ३७

माणवक चैत्यस्तम्भ के पूर्व दिग्भाग में विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। जो आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन रखा है। भद्रासन आदि आसनों रूप परिवार सहित उस सिंहासन का वर्णन करना। उस माणवक चैत्य-स्तम्भ की पश्चिम दिशा में एक बड़ी मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्व मणिमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक श्रेष्ठ रमणीय देवशय्या रखी हुई है। इसके प्रतिपाद अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए हैं। स्वर्ण के पाद हैं। पादशीर्षक अनेक प्रकार की मणियों के हैं। गाते सोने की हैं। सांधे वज्ररत्नों से भरी हुई हैं। बाण विविध रत्नमयी हैं। तूली रजतमय है। ओसीसा लोहिताक्षरत्न का है। गडोपधानिका सोने की है। उस शय्या पर शरीर प्रमाण गद्दा बिछा है। उसके शिरोभाग और चरणभाग दोनों ओर तकिये लगे हैं। वह दोनों ओर से ऊंची और मध्य में नत गम्भीर गहरी है। जैसे गंगा किनारे की बालू में पाँव रखने से पाँव धंस जाता है, उसी प्रकार बैठते ही नीचे की ओर धंस जाते हैं। उस पर रजस्राण पड़ा रहता है-मसहरी लगी हुई है। कसीदा वाला क्षौमदुकूल बिछा है। उसका स्पर्श आजिनक रूई, बूर नामक वनस्पति, मक्खन और आक की रूई के समान सुकोमल है। लाल तूस से ढका रहता है। अत्यन्त रमणीय, मनमोहक यावत् असाधारण सुन्दर है।

सूत्र - ३८

उस देवशय्या के ईशान-कोण में आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी सर्वमणिमय यावत् प्रतिरूप एक बड़ी मणिपीठिका बनी है। उस मणिपीठिका के ऊपर साठ योजन ऊंचा, एक योजन चौड़ा, वज्ररत्नमय सुंदर गोल आकार वाला यावत् प्रतिरूप एक क्षुल्लक-छोटा माहेन्द्रध्वज लगा हुआ है। जो स्वस्तिक आदि मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से उपशोभित है। उस क्षुल्लक माहेन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा में सूर्याभदेव का 'चोप्पाल' नामक प्रहरणकोश बना हुआ है। वह आयुधगृह सर्वात्मना रजतमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप है। उस प्रहरणकोश में सूर्याभदेव के परिघरत्न, तलवार, गदा, धनुष आदि बहुत से श्रेष्ठ प्रहरण सुरक्षित रखे हैं। वे सभी शस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल, चमकीले, तीक्ष्ण धार वाले और मन को प्रसन्न करने वाले आदि हैं। सुधर्मा सभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से सुशोभित हो रहा है।

सूत्र - ३९

सुधर्मा सभा के ईशान कोण में एक विशाल (जिनालय) सिद्धायतन है। वह सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा और बहत्तर योजन ऊंचा है। तथा इस सिद्धायतन का गोमानसिकाओं पर्यन्त एवं भूमिभाग तथा चंदेवा का वर्णन सुधर्मासभा के समान जानना। उस सिद्धायतन (जिनालय) के ठीक मध्यप्रदेश में सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। उस मणिपीठिका के ऊपर सोलह योजन लम्बा-चौड़ा और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचा, सर्वात्मना मणियों से बना हुआ यावत् प्रतिरूप एक विशाल देवच्छन्दक स्थापित है और उस पर तीर्थकरों की ऊंचाई बराबर वाली एक सौ आठ जिनप्रतिमाएं बिराजमान हैं।

उन जिनप्रतिमाओं का वर्णन इस प्रकार है, जैसे-उन प्रतिमाओं की हथेलियाँ और पगथलियाँ तपनीय स्वर्णमय हैं। मध्य में खचित लोहिताक्ष रत्न से युक्त अंकरत्न के नख हैं। जंघाएं, पिंडलियाँ और देहलता कनक-मय है। नाभियाँ तपनीयमय हैं। रोमराजि रिष्ट रत्नमय हैं। चूचक और श्रीवत्स तपनीयमय हैं। होठ प्रवाल के बने हुए हैं, दंतपंक्ति स्फटिकमणियों और जिह्वा एवं तालु तपनीय-स्वर्ण के हैं। नासिकाएं बीच में लोहिताक्षरत्न खचित कनकमय हैं, नेत्र लोहिताक्ष रत्न से खचित मध्य-भाग युक्त अंकरत्न के हैं और नेत्रों की तारिकाएं अक्षिपत्र तथा भौहें रिष्टरत्नमय हैं। कपोल, कान और ललाट

कनकमय हैं। शीर्षघटी वज्ररत्नमय हैं। केशान्त एवं केशभूमि तपनीय स्वर्णमय और केश रिष्टरत्नमय हैं।

उन जिन प्रतिमाओं में से प्रत्येक प्रतिमा के पीछे एक एक छत्रधारक प्रतिमाएं हैं। वे छत्रधारक प्रतिमाएं लीला करती हुई-सी भावभंगिमा पूर्वक हिम, रजत, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रभा ले कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त धवल आतपत्रों को अपने-अपने हाथों में धारण किये हुए खड़ी हैं। प्रत्येक जिन-प्रतिमा के दोनों पार्श्व भागों में एक एक चामरधारक-प्रतिमाएं हैं। वे चामर-धारक प्रतिमाएं अपने अपने हाथों में विविध मणिरत्नों से रचित चित्रामों से युक्त चन्द्रकान्त, वज्र और वैडूर्य मणियों की डंडियों वाले, पतले रजत जैसे श्वेत लम्बे-लम्बे बालों वाले शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत और मन्थन किये हुए अमृत के फेनपुंज सदृश श्वेत-धवल चामरों को धारण करके लीलापूर्वक बीजती हुई-सी खड़ी हैं। उन जिन-प्रतिमाओं के आगे दो-दो नाग-प्रतिमाएं, यक्षप्रतिमाएं, भूतप्रतिमाएं, कुंड धारक प्रतिमाएं खड़ी हैं। ये सभी प्रतिमाएं सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ यावत् अनुपम शोभा से सम्पन्न हैं।

उन जिन-प्रतिमाओं के आगे एक सौ आठ-एक सौ आठ घंटा, चन्दनकलश, भृंगार, दर्पण, थाल, पात्रियाँ, सुप्रतिष्ठान, मनोगुलिकाएं, वातकरक, चित्रकरक, रत्नकरंडक, अश्वकंठ यावत् वृषभकंठ पुष्पचंगेरिकाएं यावत् मयूरपिच्छ चंगेरिकाएं, पुष्पषटलक, तेलसमुद्गक यावत् अंजनसमुद्गक, एक सौ आठ ध्वजाएं, एक सौ आठ धूपकडुच्छुक रखे हैं। सिद्धायतन का ऊपरीभाग स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रोंसे शोभायमान है

सूत्र - ४०

सिद्धायतन के ईशान कोने में एक विशाल श्रेष्ठ उपपात-सभा बनी हुई है। सुधर्मा-सभा के समान ही इस उपपात-सभा का वर्णन समझना। मणिपीठिका की लम्बाई-चौड़ाई आठ योजन की है और सुधर्मा-सभा में स्थित देवशैय्या के समान यहाँ की शैया का ऊपरी भाग आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से शोभायमान हो रहा है। उस उपपातसभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में एक विशाल हृद है। इस हृद का आयाम एक सौ योजन एवं विस्तार पचास योजन है तथा गहराई दस योजन है। यह हृद सभी दिशाओं में एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखण्ड से परिवेष्टित हुआ है तथा इस हृद के तीन ओर अतीव मनोरम त्रिसोपान-पंक्तियाँ बनी हुई हैं।

उस हृद के ईशानकोण में एक विशाल अभिषेकसभा है। सुधर्मा-सभा के अनुरूप ही यावत् गोमानसिकाएं, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, यावत् मुक्तादाम हैं, इत्यादि इस अभिषेक सभा का भी वर्णन जानना। वहाँ सूर्याभदेव के अभिषेक योग्य सामग्री से भरे हुए बहुत-से भाण्ड रखे हैं तथा इस अभिषेक-सभा के ऊपरी भाग में आठ-आठ मंगल आदि सुशोभित हो रहे हैं। उस अभिषेकसभा के ईशान कोण में एक अलंकार-सभा है। सुधर्मासभा के समान ही इस अलंकार-सभा का तथा आठ योजन की मणिपीठिका एवं सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन समझना। अलंकारसभा में सूर्याभदेव के द्वारा धारण किये जाने वाले अलंकारों से भरे हुए बहुत-से अलंकार रखे हैं। शेष सब कथन पूर्ववत्। उस अलंकारसभा के ईशानकोण में एक विशाल व्यवसायसभा बनी है। उपपातसभा के अनुरूप ही यहाँ पर भी सपरिवार सिंहासन, मणिपीठिका आठ-आठ मंगल आदि का वर्णन कर लेना। उस व्यवसाय-सभा में सूर्याभदेव का विशाल श्रेष्ठतम पुस्तकरत्न रखा है। इसके पूठे रिष्ट रत्न के हैं। डोरा स्वर्णमय है, गांठें विविध मणिमय हैं। पत्र रत्नमय हैं। लिप्यासन वैडूर्य रत्न की है, उसका ढक्कन रिष्टरत्नमय है और सांकल तपनीय स्वर्णकी बनी है। रिष्टरत्न से बनी हुई स्याही है, वज्ररत्न की लेखनी है। रिष्ट-रत्नमय अक्षर हैं और उसमें धार्मिक लेख हैं। व्यवसायसभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मंगल आदि से सुशोभित हो रहा है। उस व्यवसायसभा में उत्तरपूर्वदिग्भागमें एक नन्दा पुष्करिणी है। हृद समान इस नन्दा पुरष्करिणी का वर्णन जानना। उस नन्दा पुष्करिणी में सर्वात्मना रत्नमय, निर्मल, यावत् प्रतिरूप एक विशाल बलिपीठ बना है।

सूत्र - ४१

उस काल और उस समय में तत्काल उत्पन्न होकर वह सूर्याभ देव आहार पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-

पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति और भाषामनःपर्याप्ति-इन पाँच पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त हुआ । पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त होने के अनन्तर उस सूर्याभदेव को इस प्रकार का आन्तरिक विचार, चिन्तन, अभिलाष, मनोगत एवं संकल्प उत्पन्न हुआ कि-मुझे पहले क्या करना चाहिए ? और उसके अनन्तर क्या करना चाहिए ? मुझे पहले क्या करना उचित है ? और बाद में क्या करना उचित है ? तथा पहले भी और पश्चात् भी क्या करना योग्य है जो मेरे हित के लिए, सुख के लिए, क्षेम के लिए, कल्याण के लिए और अनुगामी रूप से शुभानुबंध का कारण होगा ?

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देव सूर्याभदेव के इस आन्तरिक विचार यावत् उत्पन्न संकल्प को अच्छी तरह से जानकर सूर्याभदेव के पास आए और उन्होंने दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से सूर्याभदेव को अभिनन्दन करके इस प्रकार कहा-आप देवानुप्रिय के सूर्याभ विमान स्थित सिद्धायतन में जिनोत्सेधप्रमाण वाली एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएं बिराजमान हैं तथा सुधर्मा सभा के माणवक में वज्ररत्नमय गोल समुद्गकों में बहुत-सी जिन-अस्थियाँ व्यवस्थित रूप से रखी हुई हैं । वे आप देवानु-प्रिय तथा दूसरे भी बहुत से वैमानिक देवों एवं देवियों के लिए अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं । अत एव आप देवानुप्रिय के लिए उनकी पर्युपासना करने रूप कार्य करने योग्य है और यही कार्य पीछे करने योग्य है । आप देवानुप्रिय के लिए यह पहले भी श्रेयरूप है और बाद में भी यही श्रेय रूप है । यही कार्य आप देवानुप्रिय के लिए पहले और पीछे भी हितकर, सुखप्रद, क्षेमकर, कल्याणकर एवं परम्परा से सुख का साधन रूप होगा ।

सूत्र - ४२

तत्पश्चात् वह सूर्याभदेव उन सामानिकपरिषदोपगत देवों से इस अर्थ को सूनकर और हृदय में अवधारित कर हर्षित, सन्तुष्ट यावत् हृदय होता हुआ शय्या से उठा और उठकर उपपात सभा के पूर्वदिग्वर्ती द्वार से नीकला, नीकलकर हृद पर आया, हृद की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती तोरण से होकर उसमें प्रविष्ट हुआ । पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपान पंक्ति से नीचे उतरा, जल में अवगाहन और जलमज्जन किया, जलक्रीड़ा की, जलाभिषेक किया, आचमन द्वारा अत्यन्त स्वच्छ और शूचिभूत-शुद्ध होकर हृद से बाहर नीकला, जहाँ अभिषेकसभा थी वहाँ आया, अभिषेकसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ, सिंहासन के समीप आया और आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा । तदनन्तर सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और कहा-देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही सूर्याभदेव का अभिषेक करने हेतु महान अर्थ वाले महर्घ एवं महापुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित करो ।

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने सामानिक देवों की इस आज्ञा को सूनकर हर्षित यावत् विकसित हृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके विनयपूर्वक आज्ञा-वचनों को स्वीकार किया । वे उत्तरपूर्व दिग्भाग में गए और ईशानकोण में जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया । संख्यात योजन का दण्ड बनाया यावत् पुनः भी वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ एक हजार आठ स्वर्ण-कलशों की, रुप्यकलशों की, मणिमय कलशों की, स्वर्ण-रजतमय कलशों की, स्वर्ण-मणिमय कलशों की, रजत-मणिमय कलशों की, स्वर्ण-रूप्य-मणिमय कलशों की, बौमेय कलशों की एवं इसी प्रकार भृंगारों, दर्पणों, थालों, पात्रियों, सुप्रतिष्ठानों, वात-करकों, रत्नकरंडकों, पुष्पचंगेरिकाओं यावत् मयूरपिच्छचंगेरिकाओं, पुष्पपटलकों यावत् मयूरपिच्छपटलकों, सिंहासनों, छत्रों, चामरों, तेलसमुद्गकों यावत् अंजनसमुद्गकों, ध्वजाओं, धूपकडुच्छकों की विकुर्वणा की ।

विकुर्वणा करके उन स्वाभाविक और विक्रियाजन्य कलशों यावत् धूपकडुच्छकों को अपने-अपने हाथों में लिया और लेकर सूर्याभविमान से बाहर नीकले । अपनी उत्कृष्ट चपल दिव्य गति से यावत् तिर्यक् लोक में असंख्यात योजनप्रमाण क्षेत्र को उलांघते हुए जहाँ क्षीरोदधि समुद्र आए । कलशों में क्षीरसमुद्र के जल को भरा तथा वहाँ के उत्पल यावत् शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों को लिया । कमलों आदि को लेकर जहाँ पुष्करोदक समुद्र था वहाँ आए, आकर पुष्करोदक को कलशों में भरा तथा वहाँ के उत्पल शतपत्र सहस्रपत्र आदि कमलों को लिया ।

तत्पश्चात् जहाँ मनुष्यक्षेत्र था और उसमें भी जहाँ भरत-ऐरवत क्षेत्र थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे वहाँ आए और आकर उन-उन तीर्थों के जल को भरा, वहाँ की मिट्टी ग्रहण की। जहाँ गंगा, सिन्धु, रक्ता, रक्तवती महानदियाँ थीं, वहाँ आए। आकर नदियों के जल और उनके दोनों तटों की मिट्टी को लिया। नदियों के जल और मिट्टी को लेकर चुल्लहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत पर आए। कलशों में जल भरा तथा सर्व ऋतुओं के श्रेष्ठ पुष्पों, समस्त गंधद्रव्यों, समस्त पुष्पसमूहों और सर्व प्रकार की औषधियों एवं सिद्धार्थकों को लिया और फिर पद्मद्रह एवं पुंडरीकद्रह पर आए। यहाँ आकर भी पूर्ववत् कलशों में द्रह-जल भरा तथा सुन्दर श्रेष्ठ उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लिया।

फिर जहाँ हैमवत और हिरण्यवत क्षेत्रों की रोहित, रोहितांसा तथा स्वर्णकूला और रूप्यकूला महानदियाँ थी, वहाँ आए, कलशों में उन नदियों का जल भरा तथा मिट्टी ली। जहाँ शब्दापाति विकटापाति वृत्त वैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आए। समस्त ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों आदि को लिया। वहाँ से वे महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आए और वहाँ से जल एवं पुष्प आदि लिये, फिर जहाँ महापद्म और महापुण्डरीक द्रह थे, वहाँ आए। आकर द्रह जल एवं कमल आदि लिये। तत्पश्चात् जहाँ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्र थे, हरिकांता और नारिकांता महानदियाँ थीं, गंधापाति, माल्यवंत और वृत्तवैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आए और इन सभी स्थानों से जल, मिट्टी, औषधियाँ एवं पुष्प लिए। इसके बाद जहाँ निषध, नील नामक वर्षधर पर्वत थे, जहाँ तिगिंछ और केसरीद्रह थे, वहाँ आए, वहाँ आकर उसी प्रकार से जल आदि लिया। तत्पश्चात् जहाँ महाविदेह क्षेत्र था जहाँ सीता, सीतोदा महानदियाँ थी वहाँ आए और उसी प्रकार से उनका जल, मिट्टी, पुष्प आदि लिए।

फिर जहाँ सभी चक्रवर्ती विजय थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे, वहाँ आए, तीर्थोदक लिया और सभी अन्तर-नदियों के जल एवं मिट्टी को लिया फिर जहाँ वक्षस्कार पर्वत था वहाँ आए और वहाँ से सर्व ऋतुओं के पुष्पों आदि को लिया। तत्पश्चात् जहाँ मन्दर पर्वत के ऊपर भद्रशाल वन था वहाँ आए, सर्व ऋतुओं के पुष्पों, समस्त औषधियों और सिद्धार्थकों को लिया। वहाँ से नन्दनवन में आए, सर्व ऋतुओं के पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों और सरस गोशीर्ष चन्दन को लिया। जहाँ सौमनस वन था, वहाँ आए। वहाँ से सर्व ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष चन्दन और दिव्य पुष्पमालाओं को लिया, लेकर पांडुक वन में आए और सर्व ऋतुओं के सर्वोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष चन्दन, दिव्य पुष्पमालाओं, दर्दरमलय चन्दन की सुरभि गंध से सुगन्धित गंध-द्रव्यों को लिया। इन सब उत्तमोत्तम पदार्थों को लेकर वे सब आभियोगिक देव एक स्थान पर इकट्ठे हुए और फिर उत्कृष्ट दिव्यगति से यावत् जहाँ सौधर्म कल्प था और जहाँ सूर्याभविमान था, उसकी अभिषेक सभा थी और उसमें भी जहाँ सिंहासन पर बैठा सूर्याभदेव था, वहाँ आए। दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभदेव को 'जय हो विजय' शब्दों से बधाया और उसके आगे महान् अर्थ वाली, महा मूल्यवान्, महान् पुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक सामग्री उपस्थित की।

चार हजार सामानिक देवों, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधिपतियों यावत् अन्य दूसरे बहुत से देवों-देवियों ने उन स्वाभाविक एवं विक्रिया शक्ति से निष्पादित श्रेष्ठ कमलपुष्पों पर संस्थापित, सुगन्धित शुद्ध श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चन्दन के लेप से चर्चित, पंचरंगे सूत-कलावे से आविद्ध बन्धे-लिपटे हुए कंठ वाले, पद्म एवं उत्पल के ढक्कनों से ढँके हुए, सुकुमाल कोमल हाथों से लिए गए और सभी पवित्र स्थानों के जल से भरे हुए एक हजार आठ स्वर्ण कलशों यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशों, सब प्रकार की मृत्तिका एवं ऋतुओं के पुष्पों, सभी काषायिक सुगन्धित द्रव्यों यावत् औषधियों और सिद्धार्थकों से महान् ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों पूर्णक सूर्याभ देव को अतीव गौरवशाली उच्चकोटि के इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया।

इस प्रकार के महिमाशाली महोत्सवपूर्वक जब सूर्याभदेव का इन्द्राभिषेक हो रहा था, तब कितने ही देवों ने सूर्याभविमान में इस प्रकार से झरमर-झरमर विरल नन्हीं-नन्हीं बूँदों में अतिशय सुगन्धित गंधोदक की वर्षा

बरसाई कि जिससे वहाँ की धूलि दब गई, किन्तु जमीन में पानी नहीं फैला और न कीचड़ हुआ। कितने ही देवों ने सूर्याभ-विमान को झाड़ कर हतरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशांतरज और प्रशांतरज वाला बना दिया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान की गलियों, बाजारों और राजमार्गों को पानी से सींचकर, कचरा, वगैरह झाड़-बुहार कर और गोबर से लीपकर साफ किया। कितने ही देवों ने मंच बनाए एवं मंचों के ऊपर भी मंचों की रचना कर सूर्याभविमान को सजाया। कितने ही देवों ने विविध प्रकार की रंग-बिरंगी ध्वजाओं, पताकातिपताकाओं से मंडित किया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान लीप-पोतकर स्थान-स्थान पर सरस गोरोचन और रक्त दर्दर चंदन के हाथे लगाए। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान के द्वारों को चंदनचर्चित कलशों से बने तोरणों से सजाया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालाओं से विभूषित किया। कितने ही देवों ने पंचरंगे सुगंधित पुष्पों को बिखेर कर मांडने मांडकर सुशोभित किया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को कृष्ण अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क और धूप की मधमघाती सुगंध से मनमोहक बनाया। कितने ही देवों ने सूर्याभ विमान को सुरभि गंध से व्याप्त कर सुगंध की गुटिका जैसा बना दिया।

किसी ने चाँदी की वर्षा बरसाई तो किसी ने सोने की, रत्नों की, वज्ररत्नों की, पुष्पों की, फलों की, पुष्प-मालाओं की, गंधद्रव्यों की, सुगन्धित चूर्ण की और किसी ने आभूषणों की वर्षा बरसाई। कितने ही देवों ने एक दूसरे को भेंट में चाँदी दी। इसी प्रकार से किसी ने आपस में एक दूसरे को स्वर्ण, रत्न, पुष्प, फल, पुष्पमाला, सुगन्धित चूर्ण, वस्त्र, गंध द्रव्य और आभूषण भेंट रूप में दिए। कितने ही देवों ने तत, वितत, घन और शुषिर, इन चार प्रकार के वाद्यों को बजाया। कितने ही देवों ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मंद एवं रोचितावसान ये चार प्रकार के संगीत गाए। किसी ने द्रुत नाट्यविधि का प्रदर्शन किया तो किसी ने विलम्बित नाट्यविधि का एवं द्रुतविलम्बित नाट्यविधि और किसी ने अंचित नाट्यविधि दिखलाई। कितने ही देवों ने आरभट, कितने ही देवों ने भसोल, कितने ही देवों ने आरभट-भसोल, कितने ही देवों ने उत्पात-निपातप्रवृत्त, कितने ही देवों ने संकुचित-प्रसारित-रितारित व कितने ही देवों के भ्रांत-संभ्रांत नामक दिव्य नाट्यविधि प्रदर्शित की। किन्हीं किन्हीं देवों ने दार्ष्टान्तिक, प्रात्यान्तिक, सामन्तोपनिपातिक और लोकान्तमध्यावसानिक इन चार प्रकारके अभिनयों का प्रदर्शन किया।

साथ ही कितने ही देव हर्षातिरेक से बकरे-जैसी बुकबुकाहट करने लगे। कितने ही देवों ने अपने शरीर को फुलाने का दिखावा किया। कितनेक नाचने लगे, कितनेक हक-हक आवाजें लगाने लगे। लम्बी दौड़ दौड़ने लगे। गुनगुनने लगे। तांडव नृत्य करने लगे। उछलने के साथ ताल ठोकने लगे और ही ताली बजा-बजाकर कूदने लगे। तीन पैर की दौड़ लगाने, घोड़े जैसे हिनहिनाने लगे। हाथी जैसी गुलगुलाहट करने लगे। रथ जैसी घनघनाहट करने लगे और और कभी घोड़ों की हिनहिनाहट, कभी हाथी की गुलगुलाहट और रथों की घनघनाहट जैसी आवाजें करने लगे। ऊंची छलांग लगाई, और अधिक ऊपर उछले। हर्षध्वनि करने लगे। उछले और अधिक ऊपर उछले और साथ ही हर्षध्वनि करने लगे। कोई ऊपर से नीचे, कोई नीचे से ऊपर और कोई लम्बे कूदे। नीची-ऊंची और लम्बी-तीनों तरह की छलांगें मारी। किसी ने सिंह जैसी गर्जना की, एक दूसरे को रंग से भर दिया, भूमि को थपथपाया और कितनेक ने सिंहनाद किया, रंग-गुलाल उड़ाई और भूमि को भी थपथपाया। मेघों की गड़गड़ाहट, बिजली की चमक जैसा दिखावा किया और किन्हीं ने वर्षा बरसाई। मेघों के गरजने चमकने और बरसने के दृश्य दिखाए। गरमी से आकुल-व्याकुल होने का, देवों के तपने का, विशेष रूप से तपने का तो एक साथ इन तीनों का दिखावा किया। हक-हक, थक-थक, धक-धक शब्द और कितने ही अपने-अपने नामों का उच्चारण करने लगे। एक साथ इन चारों को किया। टोलियाँ बनाई, देवोद्योत किया, रुक-रुक कर बहने वाली वाततरंगों का प्रदर्शन किया। कहकहे लगाये, दुहदुहाहट करने लगे, वस्त्रों की बरसा की और टोलियाँ बनाई, देवोद्योत किया देवोत्क-लिका की, कहकहे लगाये, दुहदुहाहट की और वस्त्रवर्षा की। हाथों में उत्पल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमलों को लेकर, हाथों में कलश यावत् धूप दोनों को लेकर हर्षित सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से विकसितहृदय होते हुए इधर-उधर चारों ओर दौड़-धूप करने लगे।

तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देवों यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधि-पतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे भी बहुत से सूर्याभ राजधानी में वास करने वाले देवों और देवियों ने सूर्याभदेव को महान महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया। प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा-हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो ! हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो ! तुम्हारा भद्र-कल्याण हो ! हे जगदानन्दकारक ! तुम्हारी बारंबार जय हो ! तुम न जीते हुआँ को जीतो और विजितों का पालन करो, जितों के मध्य में निवास करो। देवों में इन्द्र के समान, ताराओं में चन्द्र के समान, असुरों में चमरेन्द्र के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान, अनेक पल्योपमों तक, अनेक सागरोपमों तक, अनेक-अनेक पल्योपमों-सागरोपमों तक, चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्म-रक्षक देवों तथा सूर्याभ विमान और सूर्याभ विमान वासी अन्य बहुत से देवों और देवियों का बहुत-बहुत अतिशय रूप से आधिपत्य यावत् करते हुए, पालन करते हुए विचरण करो। इस प्रकार कहकर पुनः जय-जयकार किया।

अतिशय महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त होने के पश्चात् सूर्याभदेव अभिषेक सभा के पूर्व-दिशावर्ती द्वार से बाहर निकला, जहाँ अलंकार-सभा थी वहाँ आया। अलंकार-सभा की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से अलंकार-सभा में प्रविष्ट हुआ। जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया, पूर्व की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। तदनन्तर उस सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने उसके सामने अलंकार उपस्थित किया। इसके बाद सूर्याभदेव ने सर्वप्रथम रोमयुक्त सुकोमल काषायिक सुरभिगंध से सुवासित वस्त्र से शरीर को पोंछा। शरीर पर सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, नाक को निःश्वास से भी उड़ जाए, ऐसा अति बारीक नेत्रा-कर्षक, सुन्दर वर्ण और स्पर्श वाले, घोड़े के थूक से भी अधिक सुकोमल, धवल जिनके पल्लों और किनारों पर सुनहरी बेलबूटे बने हैं, आकाश एवं स्फटिक मणि जैसी प्रभा वाले दिव्य देवदूष्य युगल को धारण किया। गले में हार पहना, अर्धहार पहना, एकावली पहनी, मुक्ताहार पहना, रत्नावली पहनी, एकावली पहन कर भुजाओंमें अंगद, केयूर कड़ा, त्रुटित, करधनी, हाथों की दशों अंगुलियोंमें दस अंगुठियाँ, वक्षसूत्र, मुरवि, कंठ-मुरवि, प्रालम्ब, कानों में कुंडल पहने, मस्तक पर चूड़ामणि और मुकूट पहना। इन आभूषणों को पहनने पश्चात् ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम और संघातिम, इन चार प्रकार की मालाओंसे अपने को कल्पवृक्ष के समान अलंकृत किया। ददर मलय चंदन की सुगन्ध से सुगन्धित चूर्ण को शरीर पर छिकड़ा और फिर दिव्य पुष्पमालाओं को धारण किया

सूत्र - ४३

तत्पश्चात् केशालंकारों, पुष्प-मालादि रूप माल्यालंकारों, हार आदि आभूषणालंकारों एवं देवदूष्यादि वस्त्रालंकारों धारण करके अलंकारसभा के पूर्वदिग्वर्ती से बाहर निकला। व्यवसाय सभा में आया एवं बारंबार व्यवसायसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से प्रविष्ट हुआ। जहाँ सिंहासन था वहाँ आकर यावत् सिंहासन पर आसीन हुआ। तत्पश्चात् सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने व्यवसायसभा में रखे पुस्तक-रत्न को उसके समक्ष रखा। सूर्याभदेव ने उस उपस्थित पुस्तक-रत्न को हाथ में लिया, पुस्तक-रत्न खोला, उसे बांचा। धर्मानुगत कार्य करने का निश्चय किया। वापस यथास्थान पुस्तकरत्न को रखकर सिंहासन से उठा एवं व्यवसाय सभा के पूर्व-दिग्वर्ती द्वार से बाहर निकलकर जहाँ नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया। पूर्व-दिग्वर्ती तोरण और त्रिसोपान पंक्ति में नन्दा पुष्करिणी में प्रविष्ट हुआ। पैर धोए। आचमन-कुल्ला कर पूर्ण रूप से स्वच्छ और परम शूचिभूत होकर मत्त गजराज की मुखाकृति जैसी एक विशाल श्वेतधवल रजतमय से भरी हुई भृंगार एवं वहाँ के उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लिया। नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला। सिद्धायतन की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

सूत्र - ४४

तब उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा कितने ही अन्य

बहुत से सूर्याभविमान वासी देव और देवी भी हाथों में उत्पल यावत् शतपथ-सहस्रपत्र कमलों को ल कर सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले । तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के बहुत-से अभियोगिक देव और देवियाँ हाथों में कलश यावत् धूप-दानों को लेकर हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले ।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् और दूसरे बहुत से देवों और देवियों से परिवेष्टित होकर अपनी समस्त ऋद्धि, वैभव यावत् वाद्यों की तुमुल ध्वनिपूर्वक जहाँ सिद्धायतन था, वहाँ आया । पूर्वद्वार से प्रवेश करके जहाँ देवछंदक और जिनप्रतिमाएं थीं वहाँ आया । उसने जिनप्रतिमाओं को देखते ही प्रणाम करके लोममयी प्रमार्जनी हाथ में ली और प्रमार्जनी को लेकर जिनप्रतिमाओं को प्रमार्जित किया । सुरभि गन्धोदक से उन जिनप्रतिमाओं का प्रक्षालन किया । सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया । काषायिक सुरभि गन्ध से सुवासित वस्त्र से उनको पोंछा । उन जिन-प्रतिमाओं को अखण्ड देवदूष्य-युगल पहनाया । पुष्प, माला, गन्ध, चूर्ण, वर्ण, वस्त्र और आभूषण चढ़ाये । फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालाएं पहनाई । पंचरंगे पुष्प-पुंजों को हाथ में लेकर उनकी वर्षा की और मांडने मांडकर उस स्थान को सुशोभित किया । फिर उन जिन-प्रतिमाओं के सन्मुख शुभ्र, सलौने, रजतमय अक्षत तन्दुलों से आठ-आठ मंगलों का आलेखन किया, यथा-स्वस्तिक यावत् दर्पण ।

तदनन्तर उन जिनप्रतिमाओं के सन्मुख श्रेष्ठ काले अगर, कुन्दरु, तुरुष्क और धूप की महकती सुगन्ध से व्याप्त और धूपवत्ती के समान सुरभिगन्ध को फैलाने वाले चन्द्रकांत मणि, वज्ररत्न और वैडूर्यमणि की दंडी तथा स्वर्ण-मणिरत्नों से रचित चित्र-विचित्र रचनाओं से युक्त वैडूर्यमय धूपदान को लेकर धूप-क्षेप किया तथा विशुद्ध अपूर्व अर्थसम्पन्न अपुनरुक्त महिमाशाली एक सौ आठ छन्दों में स्तुति की । स्तुति करके सात-आठ पग पीछे हटा, और फिर पीछे हटकर बायां घुटना ऊंचा किया, दायां घुटना जमीन पर टिकाकर तीन बार मस्तक को भूमितल पर नमाया । नमाकर कुछ ऊंचा उठाया, तथा दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि कर इस प्रकार कहा-

अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो, धर्म की आदि करने वाले, तीर्थकर, स्वयंबुद्ध, पुरुषों में उत्तम पुरुषों में सिंह समान, पुरुषोंमें श्रेष्ठ पुंडरीक समान, पुरुषोंमें श्रेष्ठ गन्धहस्ती समान, लोकमें उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करनेवाले, लोकमें प्रदीप समान लोका-लोक को प्रकाशित करनेवाले, अभयदाता, श्रद्धा-ज्ञान रूप नेत्र दाता, मोक्षमार्गदाता, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्म उपदेशक, धर्म नायक, धर्म सारथी, चातुर्गतिक संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती, अप्रतिहत-श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक, छद्म के नाशक, रागादि शत्रुओं को जीतने वाले तथा अन्य जीवों को भी कर्म-शत्रुओं को जीतने के लिए प्रेरित करने वाले, संसारसागर को स्वयं तिरने हुए तथा दूसरों को भी तिरने का उपदेश देने वाले, बोध को प्राप्त तथा दूसरों को भी बोधि प्राप्त कराने वाले, स्वयं कर्ममुक्त एवं अन्यों को भी कर्ममुक्त होने का उपदेश देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा शिव, अचल, नीरोग, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध अपुनरावृत्ति रूप सिद्धगति नामक स्थान में बिराजमान भगवंतों को वन्दन-नमस्कार हो ।

भगवंतों को वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् सूर्याभदेव देवच्छन्दक और सिद्धायतन के मध्य देशभाग में आया । मोरपीछी उठाई और मोरपीछी से सिद्धायतन के अति मध्यदेशभाग को प्रमार्जित किया फिर दिव्य जल-धारा से सींचा, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करके हाथे लगाए, मांडने-मांडे यावत् हाथ में लेकर पुष्पपुंज बिखरे । धूप प्रक्षेप किया-और फिर सिद्धायतन के दक्षिण द्वार पर आकर मोरपीछी ली और उस मोरपीछी से द्वारशाखाओं पुतलियों एवं व्यालरूपों को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, सन्मुख धूप जलाई, पुष्प चढ़ाये, मालाएं चढ़ाई, यावत् आभूषण चढ़ाए । फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई गोल-गोल लम्बी मालाओं से विभूषित किया । धूपप्रक्षेप करने के बाद जहाँ दक्षिणद्वारवर्ती मुखमण्डप था और उसमें भी जहाँ उस दक्षिण दिशा के मुखमण्डप का अतिमध्य देशभाग था, वहाँ आया और मोरपीछी ली, उस अतिमध्य देशभाग को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, मांडने मांडे तथा ग्रहीत पुष्प पुंजों को बिखेर कर उपचरित किया यावत् धूपक्षेप किया ।

इसके बाद उस दक्षिणदिग्वर्ती मुखमण्डप के पश्चिमी द्वार पर आया, वहाँ आकर मोरपीछी ली । द्वार-शाखाओं, पुतलियों एवं व्याल रूपों को पूजा, दिव्य जलधारा से सींचा, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया । धूपक्षेप किया, पुष्प यावत् आभूषण चढ़ाये । लम्बी-लम्बी गोल मालाएं लटकायीं । कचग्रहवत् विमुक्त पुष्पपुंजों से उपचरित किया, धूप जलाई । तत्पश्चात् उसी दक्षिणी मुखमण्डप की उत्तरदिशा में स्थित स्तम्भ-पंक्ति के निकट आया । वहाँ आकर लोमहस्तक से बनी प्रमार्जनी को उठाया, उसमे स्तम्भों को, पुतलियों को और व्यालरूपों को प्रमार्जित किया यावत् धूप जलाने तक किया । इसके बाद दक्षिणदिशावर्ती मुखमण्डप के पूर्वी द्वार पर आया, लोमहस्तक हाथ में लिया और उससे द्वारशाखाओं, पुतलियों, सर्परूपों को साफ किया, यावत् धूप जलाने तक किया । तत्पश्चात् उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप के दक्षिण द्वार पर आया और द्वारचेटियों आदि को साफ किया, यावत् पूर्वोक्त सब कार्य किए ।

तदनन्तर जहाँ दाक्षिणात्य प्रेक्षागृहमण्डप था, एवं उसका अतिमध्य देशभाग था और उसके मध्य में बना हुआ वज्रमय अक्षपाट तथा उस पर बनी मणिपीठिका एवं मणिपीठिका पर स्थापित सिंहासन था, वहाँ आया और मोरपीछी लेकर उससे अक्षपाट, मणिपीठिका और सिंहासन को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपप्रक्षेप किया, पुष्प चढ़ाये तथा ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल-गोल मालाओं से विभूषित किया यावत् धूपक्षेप करने के बाद अनुक्रम से जहाँ उसी दक्षिणी प्रेक्षागृह-मण्डप के पश्चिमी द्वार एवं उत्तरी द्वार थे वहाँ आया और वहाँ आकर पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य किए । उसके बाद पूर्वी द्वार पर आया । यहाँ आकर भी सब कार्य पूर्ववत् किये । तत्पश्चात् दक्षिणी द्वार पर आया, वहाँ आकर भी प्रमार्जनादि सब कार्य किए । इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यस्तूप के सन्मुख आया । वहाँ आकर स्तूप और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूप जलाई, पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी मालाएं लटकाई आदि सब कार्य सम्पन्न किये । अनन्तर जहाँ पश्चिम दिशा की मणिपीठिका थी, जहाँ पश्चिम दिशा में बिराजमान जिनप्रतिमा थी वहाँ आकर प्रमार्जनादि सब कार्य किए । इसके बाद उत्तर-दिशावर्ती मणिपीठिका और जिनप्रतिमा के पास आया । प्रमार्जनादि सब कार्य किए ।

इसके पश्चात् जहाँ पूर्वदिशावर्ती मणिपीठिका थी तथा पूर्वदिशा में स्थापित जिनप्रतिमा थी, वहाँ आया । पूर्ववत् प्रमार्जन आदि कार्य किए । इसके बाद जहाँ दक्षिण दिशा की मणिपीठिका और दक्षिणदिशावर्ती जिन-प्रतिमा थी वहाँ आया और पूर्ववत् कार्य किये । इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यवृक्ष के पास आया । पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य किए । इसके बाद जहाँ माहेन्द्रध्वज था, दक्षिण दिशा की नन्दा पुष्करिणी थी, वहाँ आया । मोरपीछी को हाथ में लिया और फिर तोरणों, त्रिसोपानों काष्ठपुतलियों और सर्परूपकों को मोरपीछी से प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा सींची, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी पुष्पमालाओं से विभूषित किया और धूपक्षेप किया । तदनन्तर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करके उत्तरदिशा की नन्दा पुष्करिणी पर आया और वहाँ पर भी पूर्ववत् प्रमार्जनादि धूपक्षेप पर्यन्त कार्य किए । इसके बाद उत्तरदिशावर्ती चैत्यवृक्ष और चैत्यस्तम्भ के पास आया एवं पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य किए । इसके पश्चात् पश्चिम दिशा में स्थापित प्रतिमा थी, वहाँ आकर भी पूर्ववत् धूपक्षेपपर्यन्त कार्य किये ।

तत्पश्चात् वह उत्तर दिशा के प्रेक्षागृह मण्डप में आया और धूपक्षेपपर्यन्त दक्षिण दिशा के प्रेक्षागृहमण्डप जैसी समस्त वक्तव्यता यहाँ जानना । इसके बाद वह उत्तर दिशा के मुखमण्डप और उस उत्तरदिशा के मुखमण्डप के बहुमध्य देशभाग में आया । यहाँ आकर पूर्ववत् अक्षपाट, सब कार्य किए । इसके बाद वह पश्चिमी द्वार पर आया, वहाँ पर भी प्रमार्जनादि सब कार्य किए । तत्पश्चात् उत्तरी द्वार और उसकी दक्षिण दिशा में स्थित स्तम्भ-पंक्ति के पास आया । वहाँ भी पूर्ववत् सब कार्य किए । तदनन्तर सिद्धायतन के उत्तर द्वार पर आया । यहाँ भी पुतलियों आदि के प्रमार्जन आदि कार्य किये । इसके अनन्तर सिद्धायतन के पूर्वदिशा के द्वार पर आया यहाँ पर भी पूर्ववत् कार्य किये । इसके बाद जहाँ पूर्वदिशा का मुखमण्डप का अतिपर भी पूर्ववत् कार्य किये । इसके बाद

जहाँ पूर्वदिशा का मुखमण्डप का अतिमध्य देशभाग था, वहाँ आया और प्रमार्जना आदि सब कार्य किए । इसके बाद जहाँ उस पूर्व दिशा के मुखमण्डप का दक्षिणी द्वार था और उसकी पश्चिम दिशा में स्थित स्तम्भपंक्ति थी वहाँ आया। फिर उत्तरदिशा के द्वार पर आया और पहले के समान इन स्थानों पर प्रमार्जित आदि सभी कार्य किये । इसी प्रकार से पूर्व दिशा के द्वार पर आकर भी पूर्ववत् सब कार्य किये ।

इसके अनन्तर पूर्व दिशा के प्रेक्षागृह-मण्डप में आया । अक्षपाटक, मणिपीठिका सिंहासन का प्रमार्जन आदि किया और फिर क्रमशः उस प्रेक्षागृहमण्डप के पश्चिम, उत्तर, पूर्व, एवं दक्षिण दिशावर्ती प्रत्येक द्वार पर जाकर प्रमार्जना आदि सब कार्य पूर्ववत् किये । इसी प्रकार स्तूप की, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चार दिशाओं में स्थित मणिपीठिकाओं, जिनप्रतिमाओं, यावत् प्रमार्जना से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये । इसके पश्चात् जहाँ सुधर्मा सभा थी वहाँ आया और पूर्वदिशावर्ती द्वार से उस सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ । जहाँ माणवक चैत्य-स्तम्भ था और उस स्तम्भ में जहाँ वज्रमय गोल समुद्गक रखे थे वहाँ आया । मोरपीछी उठाई और वज्रमय गोल समुद्गकों को प्रमार्जित कर उन्हें खोया । उनमें रखी हुई जिन-अस्थियों को लोमहस्तक से पौछा, सुरभि गंधोदक से उनका प्रक्षालन करके फिर सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओं से उनकी अर्चना की, धूपक्षेप किया और उसके बाद उन जिन-अस्थियों को पुनः उन्हीं वज्रमय गोल समुद्गकों को बन्द कर रख दिया । इसके बाद मोरपीछी से माणवक चैत्यस्तम्भ को प्रमार्जित किया, यावत् धूपक्षेप किया । इसके पश्चात् सिंहासन और देवशय्या के पास आया । वहाँ पर भी प्रमार्जना आदि कार्य किए । इसके बाद क्षुद्र माहेन्द्रध्वज के पास आया और वहाँ भी पहले की तरह प्रमार्जना आदि सब कार्य किये ।

इसके अनन्तर चौपाल नामक अपने प्रहरणकोश में आया । आकर मोर पंखों की प्रमार्जनिका से आयुध-शाला चौपाल को प्रमार्जित किया । उसका दिव्य जलधारा से प्रक्षालन किया । वहाँ सरस गोशीर्ष चन्दन के हाथे लगाये, पुष्प आदि चढ़ाये और ऊपर से नीचे तक लटकती लम्बी-लम्बी मालाओं से उसे सजाया यावत् धूपदान पर्यन्त कार्य सम्पन्न किये । इसके बाद सुधर्मासभा के अतिमध्यदेश भाग में बनी हुई मणिपीठिका एवं देवशय्या के पास आया यावत् धूपक्षेप किया । इसके पश्चात् पूर्वदिशा के द्वार से होकर उपपात सभा में प्रविष्ट हुआ । यहाँ पर भी पूर्ववत् प्रमार्जना आदि करके उपपात सभा के दक्षिणी द्वार पर आया । वहाँ आकर अभिषेकसभा के समान यावत् पूर्ववत् पूर्वदिशाकी नन्दा पुष्करिणीकी अर्चनाकी। बादमे हृद पर आया, पहले की तरह तोरणों, त्रिसोपानों, काष्ठ-पुतलियों और व्यालरूपों की मोरपीछी से प्रमार्जना की, यावत् धूपक्षेपपर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये ।

इसके अनन्तर अभिषेकसभा में आया और यहाँ पर भी पहले की तरह सिंहासन मणिपीठिका को मोर-पीछी से प्रमार्जित किया, जलधारा से सिंचित किया आदि धूप जलाने तक के सब कार्य किये । तत्पश्चात् दक्षिण-द्वारादि के क्रम से पूर्व दिशावर्ती-नन्दापुष्करिणीपर्यन्त सिद्धायतनवत् धूपप्रक्षेप तक के कार्य सम्पन्न किये । इसके पश्चात् अलंकारसभा में आया और धूपदान तक के सब कार्य सम्पन्न किये । इसके बाद व्यवसाय सभा में आया और मोरपीछी से पुस्तकरत्न को पौछा, फिर उस पर दिव्य जल छिड़का और सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओं से उसकी अर्चना की इसके बाद मणिपीठिका की, सिंहासन की अति मध्य देशभाग की प्रमार्जना की, आदि धूपदान तक के सर्व कार्य किये । तदनन्तर दक्षिणद्वारादि के क्रम से पूर्व नन्दा पुष्करिणी तक सिद्धायतन की तरह प्रमार्जना आदि कार्य किये । इसके बाद वह हृद पर आया । प्रमार्जना आदि धूपक्षेपपर्यन्त कार्य सम्पन्न किये । इन सबकी अर्चना कर लेने के बाद वह बलिपीठ के पास आया और बलि-विसर्जन करके अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी-

हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और शीघ्रातिशीघ्र सूर्याभ विमान के शृंगाटकों में, त्रिकों में, चतुष्कों में, चत्वरों में, चतुर्मुखों में, राजमार्गों में, प्राकारों में, अट्टालिकाओं में, चरिकाओं में, द्वारों में, गोपुरों में, तोरणों, आरामों, उद्यानों, वनों, वनराजियों, काननों, वनखण्डों में जा-जा कर अर्चना करो और अर्चना करके शीघ्र ही यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ, तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सूनकर यावत्

स्वीकार करके सूर्याभ विमान के शृंगाटकों, यावत् वनखण्डों की अर्चनिका की और अर्चनिका करके सूर्याभदेव के पास आकर आज्ञा वापस लौटाई-तदनन्तर वह सूर्याभदेव जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी, वहाँ आया और पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपानों से नन्दा पुष्करिणी में उतरा । हाथ-पैरों को धोया और फिर नन्दा पुष्करिणी से बाहर नीकलकर सुधर्मा सभा की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ ।

इसके बाद सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे भी बहुत से सूर्याभ विमानवासी देव-देवियों से परिवेष्टित होकर सर्व ऋद्धि यावत् तुमुल वाद्यध्वनि पूर्वक जहाँ सुधर्मा सभा थी वहाँ आया और पूर्व दिशा के द्वार से सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ । सिंहासन के समीप आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया ।

सूत्र - ४५

तदनन्तर उस सूर्याभदेव की पश्चिमोत्तर और उत्तरपूर्व दिशा में स्थापित चार हजार भद्रासनों पर चार हजार सामानिक देव बैठे । उसके बाद सूर्याभदेव की दिशा में चार भद्रासनों पर चार अग्रमहिषियाँ बैठीं । तत्पश्चात् सूर्याभ देव के दक्षिण-पूर्वदिक् कोण में अभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देव आठ हजार भद्रासनों पर बैठे । सूर्याभदेव की दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के दस हजार देव दस हजार भद्रासनों पर बैठे । तदनन्तर सूर्याभ देव के दक्षिण-पश्चिम दिग् भाग में बाह्य परिषद् के बारह हजार देव बारह हजार भद्रासनों पर बैठे-तत्पश्चात् सूर्याभदेव की पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति सात भद्रासनों पर बैठे ।

इसके बाद सूर्याभदेव की चारों दिशाओं में सोलह हजार आत्मरक्षक देव पूर्वादि चारों दिशामें भद्रासनों पर बैठे । वे सभी आत्मरक्षक देव अंगरक्षा के लिए गाढबन्धन से बद्ध कवच को शरीर पर धारण करके, बाण एवं प्रत्यंचा से सन्नद्ध धनुष को हाथों में लेकर, गले में ग्रैवेयक नामक आभूषण-विशेष को पहनकर, अपने-अपने विमल और श्रेष्ठ चिह्नपट्टकों को धारण करके, आयुध और पहरणों से सुसज्जित हो, तीन स्थानों पर नमित और जुड़े हुए वज्रमय अग्रभाग वाले धनुष, दंड और बाणों को लेकर, नील-पीत-लाल प्रभा वाले बाण, धनुष, चारु चमड़े के गोफन, दंड, तलवार, पाश-जाल को लेकर एकाग्र मन से रक्षा करने में तत्पर, स्वामीआज्ञा का पालन करने में सावधान, गुप्त-आदेश पालन करने में तत्पर, सेवकोचित गुणों से युक्त, अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए उद्यत, विनयपूर्वक अपनी आचार-मर्यादा के अनुसार किंकर होकर स्थित थे ।

सूत्र - ४६

सूर्याभदेव के समस्त चरित को सूनने के पश्चात् भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से निवेदन किया - भदन्त ! सूर्याभदेव की भवस्थिति कितने काल की है ? गौतम ! चार पल्योपम की है । भगवन् ! सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! चार पल्योपम की है । यह सूर्याभदेव महाऋद्धि, महाद्युति, महान् बल, महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है । अहो भदन्त ! वह सूर्याभदेव ऐसा महाऋद्धि, यावत् महाप्रभावशाली है । उन्होंने पुनः प्रश्न किया-

सूत्र - ४७

भगवन् ! सूर्याभदेव को इस प्रकार की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव कैसे मिला है ? उसने कैसे प्राप्त किया ? किस तरह से अधिगत किया है, स्वामी बना है ? वह सूर्याभदेव पूर्व भव में कौन था ? उसका क्या नाम और गोत्र था ? वह किस ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडंब, पत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, संवाह, सन्निवेश का निवासी था ? इसने ऐसा क्या दान में दिया, ऐसा अन्त-प्रान्तादि विरस आहार खाया, ऐसा क्या कार्य किया, कैसा आचरण किया और तथारूप श्रमण अथवा माहण से ऐसा कौन सा धार्मिक आर्य सुवचन सूना कि जिससे सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवऋद्धि यावत् देवप्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत किया है ?

दीपरत्नसागरकृत् 'सूर्याभदेव विवरण' का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

सूत्र - ४८

श्रमण भगवान महावीर ने गौतमस्वामी से इस प्रकार कहा-हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में केकयार्ध नामक जनपद था । भवनादिक वैभव से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से रहित और समृद्ध था । सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान मनोरम, प्रासादिक यावत् अतीव अतीव मनोहर था । उस केकय-ार्ध जनपद में सेयविया नामकी नगरी थी । यह नगरी भी ऋद्धि-सम्पन्न स्तिमित एवं समृद्धिशाली यावत् प्रतिरूप थी । उस सेयविया नगरी के बाहर ईशान कोण में मृगवन नामक उद्यान था । यह उद्यान रमणीय, नन्दनवन के समान सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, शुभ, सुरभिगंध यावत् प्रतिरूप था ।

उस सेयविया नगरी के राजा का नाम प्रदेशी था । प्रदेशी राजा यावत् महान् था । किन्तु वह अधार्मिक, अधर्मिष्ठ, अधर्माख्यायी, अधर्मानुग, अधर्मप्रलोकी, अधर्मप्रजनक, अधर्मशीलसमुदाचारी तथा अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला था । वह सदैव 'मारो, छेदन करो, भेदन करो' इस प्रकार की आज्ञा का प्रवर्तक था । उसके हाथ सदा रक्त से भरे रहते थे । साक्षात् पाप का अवतार था । प्रकृति से प्रचण्ड, रौद्र और क्षुद्र था । साहसिक था । उत्कंचन, बदमाशों और ठगों को प्रोत्साहन देने वाला, उकसाने वाला था । लांच, वंचक, धोखा देने वाला, मायावी, कपटी, कूट-कपट करने में चतुर और अनेक प्रकार के झगड़ा-फिसाद रचकर दूसरों को दुःख देने वाला था । निश्शील था । निर्भ्रत था, निर्गुण था, निर्मर्याद था, कभी भी उसके मन में प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि करने का विचार नहीं आता था । अनेक द्विपद, चतुष्पद, सरीसृप आदि की हत्या करने, उन्हें मारने, प्राण-रहित करने, विनाश करने से साक्षात् अधर्म की ध्वजा जैसा था, गुरुजनों को देखकर भी उनका आदर करने के लिए आसन से खड़ा नहीं होता था, उनका विनय नहीं करता था और जनपद को प्रजाजनों से राजकर लेकर भी उनका सम्यक् प्रकार से पालन और रक्षण नहीं करता था ।

सूत्र - ४९

उस प्रदेशी राजा की सूर्यकान्ता रानी थी, जो सुकुमाल हाथ पैर आदि अंगोपांग वाली थी, इत्यादि । वह प्रदेशी राजा के प्रति अनुरक्त थी, और इष्ट प्रिय-शब्द, स्पर्श, यावत् अनेक प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगती हुई रहती थी ।

सूत्र - ५०

उस प्रदेशी राजा का ज्येष्ठ पुत्र और सूर्यकान्ता रानी का आत्मज सूर्यकान्त नामक राजकुमार था । वह सुकोमल हाथ पैर वाला, अतीव मनोहर था । वह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था । वह प्रदेशी राजा के राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोठार, पुर और अंतःपुर की स्वयं देखभाल किया करता था ।

सूत्र - ५१

उस प्रदेशी राजा का उम्र में बड़ा भाई एवं मित्र सरीखा चित्त नामक सारथी था । वह समृद्धिशाली यावत् बहुत से लोगों के द्वारा भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला था । साम-दण्ड-भेद और उपप्रदान नीति, अर्थशास्त्र एवं विचार-विमर्श प्रधान बुद्धि में विशारद था । औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी बुद्धियों से युक्त था । प्रदेशी राजा के द्वारा अपने बहुत से कार्यों में, रहस्यमय गोपनीय प्रसंगों में, निश्चय करने में, राज्य सम्बन्धी व्यवहार में पूछने योग्य था, बार-बार विशेष रूप से पूछने योग्य था । वह सबके लिए मेढी के समान था, प्रमाण था, पृथ्वी समान आधार था, रस्सी समान आलम्बन था, नेत्र के समान मार्गदर्शक था, सभी स्थानों मन्त्री, अमात्य आदि पदोंमें प्रतिष्ठाप्राप्त था । सबको विचार देनेवाला था तथा चक्र की धूरा समान राज्य-संचालक था ।

सूत्र - ५२

उस काल और उस समय में कुणाला नामक जनपद-देश था । वह देश वैभवसंपन्न, स्तिमित-स्वपरचक्र के भय से मुक्त और धन-धान्य से समृद्ध था । उस कुणाला जनपद में श्रावस्ती नाम की नगरी थी, जो ऋद्ध, स्तिमित,

समृद्ध यावत् प्रतिरूप थी। उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में कोष्ठक नाम का चैत्य था। यह चैत्य अत्यन्त प्राचीन यावत् प्रतिरूप था। उस श्रावस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी आज्ञापालक जितशत्रु नामक राजा था, जो महाहिमवन्त आदि पर्वतों के समान प्रख्यात था। तत्पश्चात् किसी एक समय प्रदेशी राजा ने महार्थ बहुमूल्य, महान् पुरुषों के योग्य, विपुल, राजाओं को देने योग्य प्राभृत सजाया, चित्त सारथी को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा-हे चित्त ! तुम श्रावस्ती नगरी जाओ और वहाँ जितशत्रु राजा को यह महार्थ यावत् भेंट दे आओ तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं वहाँ की शासन-व्यवस्था, राजा की दैनिकचर्या, राजनीति और राजव्यवहार को देखो, सूनो और अनुभव करो। तब वह चित्त सारथी प्रदेशी राजा की इस आज्ञा को सूनकर हर्षित यावत् आज्ञा स्वीकार करके उस महार्थक यावत् उपहार को लिया और प्रदेशी राजा के पास से नीकलकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ जहाँ अपना घर था, वहाँ आया। उस महार्थक उपहार को एक तरफ रख दिया और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। उनसे इस प्रकार कहा-

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही छत्र सहित यावत् चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर तैयार कर लाओ यावत् इस आज्ञा को वापस लौटाओ। तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने चित्त सारथी की आज्ञा सूनकर शीघ्र ही छत्रसहित यावत् युद्ध के लिए सजाये गये चातुर्घटिक अश्वरथ को जोत कर उपस्थित कर दिया और आज्ञा वापस लौटाई, कौटुम्बिक पुरुषों का यह कथन सूनकर चित्त सारथी हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् विकसितहृदय होते हुए उसने स्नान किया, बलिकर्म कौतुक मंगल-प्रायश्चित्त किये और फिर अच्छी तरह से शरीर पर कवच बांधा। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई, गले में ग्रैवेयक और अपने श्रेष्ठ संकेतपट्टक को धारण किया एवं आयुध तथा प्रहरणों को ग्रहण कर, वह महार्थक यावत् उपहार लेकर वहाँ आया जहाँ चातुर्घट अश्वरथ खड़ा था। आकर चातुर्घट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ

तत्पश्चात् सन्नद्ध यावत् आयुध एवं प्रहरणों से सुसज्जित बहुत से पुरुषों से परिवृत्त हो, कोरंट पुष्प की मालाओं से विभूषित छत्र को धारण कर, सुभटों और रथों के समूह के साथ अपने घर से रवाना हुआ और सेयविया नगरी के बीचोंबीच से नीकलकर सुखपूर्वक रात्रिविश्राम, प्रातः कलेवा, पास-पास अन्तरावास करते, और जगह-जगह ठहरते केकयार्ध जनपद के बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ कुणाला जनपद था, जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, वहाँ पहुँचा। श्रावस्ती नगरी के मध्यभाग में प्रविष्ट कर जितशत्रु राजा की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और रथ से नीचे उतरा। तदनन्तर उस महार्थक यावत् भेंट लेकर आभ्यन्तर उपस्थानशाला में जहाँ जितशत्रु राजा बैठा था, वहाँ आया। वहाँ दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से जितशत्रु राजा का अभिनन्दन किया और फिर उस महार्थक यावत् उपहार को भेंट किया। तब जितशत्रु राजा ने चित्त सारथी द्वारा भेंट किये गये इस महार्थक यावत् उपहार को स्वीकार किया एवं चित्त सारथी का सत्कार-सम्मान किया और बिदा करके विश्राम करने के लिए राजमार्ग पर आवास स्थान दिया।

तत्पश्चात् चित्त सारथी बिदाई लेकर जितशत्रु राजा के पास से नीकला और जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, चार घंटों वाला अश्वरथ खड़ा था, वहाँ आया। उस पर सवार हुआ। फिर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से होता हुआ राजमार्ग पर अपने ठहरने के लिए निश्चित किये गये आवास-स्थान पर आया। वहाँ घोड़ों को रोका, रथ से नीचे उतरा। इसके पश्चात् उसने स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मंगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध और उचित मांगलिक वस्त्र पहने एवं अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। भोजन आदि करके तीसरे प्रहर गंधर्वों, नर्तकों और नाट्यकारों के संगीत, नृत्य और नाट्याभिनयों को सूनते-देखते हुए तथा इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंधमूलक पाँच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगते हुए विचरने लगा।

सूत्र - ५३

उस काल और उस समय में जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, आत्मबल से युक्त, अधिक रूपवान्, विनयवान्, सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के धारक, लज्जावान्, लाघववान्, लज्जालाघवसंपन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोध, मान, माया, और लोभ को जीतने वाले, जीवित रहने की आकांक्षा एवं मृत्यु के भय से विमुक्त, तपः

प्रधान, गुणप्रधान, करणप्रधान, चरणप्रधान, निग्रह-प्रधान, निश्चय प्रधान, आर्जवप्रधान, मार्दवप्रधान, लाघवप्रधान, क्षमाप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्तिप्रधान, विद्याप्रधान, मंत्रप्रधान, कुशल अनुष्ठानों में प्रधान, वेदप्रधान, नयप्रधान, नियमप्रधान, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार, घोर परीषहों, इन्द्रियों और कषायों का निग्रह में कठोर, घोरव्रती, घोरतपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, शरीरसंस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाये रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, मतिज्ञानादि चार ज्ञानों के धनी पार्श्वपत्य केशी नामक कुमारश्रमण पाँच सौ अनगारों से परिवृत्त होकर अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पधारे एवं श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथोचित अवग्रह को ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

सूत्र - ५४

तत्पश्चात् श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में लोग आपस में चर्चा करने लगे, लोगों के झुंड इकट्ठे होने लगे, लोगों के बोलने की घोघाट सूनाई पड़ने लगी, जनकोलाहल होने लगा, भीड़ के कारण लोग आपस में टकराने लगे, एक के बाद एक लोगों के टोले आते दिखाई देने लगे, इधर-उधर से आकर लोग एक स्थान पर इकट्ठे होने लगे, यावत् पर्युपासना करने लगे ।

तब लोगों की बातचीत, जनकोलाहल सूनकर तथा जनसमूह को देखकर चित्त सारथी को इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् उत्पन्न हुआ कि क्या आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमह है ? अथवा स्कन्दमह है ? या रुद्रमह, मुकुन्दमह, शिवमह, वैश्रमणमह, नागमह, यक्षमह, भूतमह, स्तूपमह, चैत्यमह, वृक्षमह, गिरिमह, दरिमह, कूपमह, नदीमह, सरमह अथवा सागरमह है ? कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय, उग्रवंशीयकुमार, भोगवंशीय, राजन्यवंशीय, इब्भ, इब्भपुत्र तथा दूसरे भी अनेक राजा ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्यश्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि सभी स्नान कर, बलिकर्म कर, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कर, मस्तक और गले में मालाएं धारण कर, मणिजटित स्वर्ण के आभूषणों से शरीर को विभूषित कर, गले में हार, अर्धहार, तिलड़ी, झूमका, और कमर में लटकते हुए कटिसूत्र पहनकर, शरीर पर चंदन का लेप कर, आनंदातिरेक से सिंहनाद और कलकल ध्वनि से श्रावस्ती नगरी को गुंजाते हुए जनसमूह के साथ एक ही दिशा में मुख करके जा रहे हैं आदि । यावत् उनसे में कितने ही घोड़ों पर सवार होकर, कई हाथी पर सवार होकर, रथों में बैठकर, या पालखी या स्यंदमानिका में बैठकर और कितने ही अपने अपने समुदाय बनाकर पैदल ही जा रहे हैं । ऐसा विचार किया और विचार करके कंचुकी पुरुष को बुलाकर उससे पूछा-देवानुप्रिय ! आज क्या श्रावस्ती नगरी में इन्द्र-महोत्सव है यावत् सागरयात्रा है कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय आदि सभी लोग अपने-अपने घरों से निकलकर एक ही दिशा में जा रहे हैं ?

तब उस कंचुकी पुरुष ने केशी कुमारश्रमण के पदार्पण होने के निश्चित समाचार जानकर दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से वधाकर चित्तसारथी से निवेदन किया-देवानुप्रिय ! आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्र-महोत्सव यावत् समुद्रयात्रा आदि नहीं है । परन्तु हे देवानुप्रिय ! आज जाति आदि में संपन्न पार्श्वपत्य केशी नामक कुमारश्रमण यावत् एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहाँ पधारे हैं यावत् कोष्ठक चैत्य में बिराजमान हैं । इसी कारण आज श्रावस्ती नगरी के ये अनेक उग्रवंशीय यावत् इब्भ, इब्भपुत्र आदि वंदना आदि करने के विचार से बड़े-बड़े समुदायों में अपने घरों से निकल रहे हैं । तत्पश्चात् कंचुकी पुरुष से यह बात सून-समझकर चित्त सारथी ने हृष्ट-तुष्ट यावत् हर्षविभोर होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । उनसे कहा शीघ्र ही चार घंटों वाले अश्वरथ को जोतकर उपस्थित करो । यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष छत्रसहित अश्वरथ को जोतकर लाये ।

तदनन्तर चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किया, शुद्ध एवं सभाउचित मांगलिक वस्त्रों को पहना, अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और वह चार घण्टों वाले अश्वरथ के पास आया । उस चातुर्घट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ एवं कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र धारण करके सुभटों के विशाल समुदाय के साथ श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच होकर निकला । जहाँ कोष्ठक

नामक चैत्य था और जहाँ केशी कुमारश्रमण बिराज रहे थे, वहाँ आया। केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर घोड़ों को रोका और रथ खड़ा किया। नीचे ऊतरा। जहाँ केशी कुमारश्रमण थे, वहाँ आया। आकर दक्षिण दिशा से प्रारंभ कर केशीकुमार की तीन बार प्रदक्षिणा की। वंदन-नमस्कार किया। समुचित स्थान पर सम्मुख बैठकर धर्मोपदेश सुनने की ईच्छा से नमस्कार करता हुआ विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी और उस अतिविशाल परिषद् को चार याम धर्म का उपदेश दिया। समस्त प्राणातिपात से विरमण, समस्त मृषावाद से विरत होना, समस्त अदत्तादान से विरत होना, समस्त बहिर्द्धादान से विरत होना। इसके बाद वह अतिविशाल परिषद् केशी कुमारश्रमण से धर्मदेशना सुनकर एवं हृदय में धारण कर जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई।

तदनन्तर वह चित्त सारथी केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवण कर एवं उसे हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ यावत् अपने आसन से उठा। केशी कुमारश्रमण की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया। इस प्रकार बोला-भगवन् ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा है। इस पर प्रतीति करता हूँ। मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अंगीकार करना चाहता हूँ। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। भगवन् ! यह तथ्य है। यह अविद्यत है। असंदिग्ध है। मुझे ईच्छित है, ईच्छित, प्रतीच्छित है यह वैसा ही है जैसा आप निरूपण करते हैं। ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया, पुनः बोला-देवानुप्रिय ! जिस तरह से आपके पास अनेक उग्रवंशीय, भोगवंशीय यावत् इभ्य एवं इभ्यपुत्र आदि हिरण्य त्याग कर, स्वर्ण को छोड़कर तथा धन, धान्य, बल, वाहन, कोश, कोठार, पुर-नगर, अन्तःपुर का त्याग कर और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल आदि सारभूत द्रव्यों का ममत्व छोड़कर, उन सबको दीन-दरिद्रों में वितरित कर, पुत्रादि में बँटवारा कर, मुण्डित होकर, प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार का त्याग कर यावत् प्रव्रजित होने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ। मैं आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत मूलक बारह प्रकार का गृहीधर्म अंगीकार करना चाहता हूँ।

चित्त सारथी की भावना को जानकर केशी कुमारश्रमण ने कहा-देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध मत करो। तब चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण के पास पाँच अणुव्रत यावत् श्रावक धर्म को अंगीकार किया। तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण की वन्दना की, नमस्कार किया। जहाँ चार घंटों वाला अश्वरथ था, उस ओर चलने को तत्पर हुआ। वहाँ जाकर चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, फिर जिस ओर से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

सूत्र - ५५

तब वह चित्त सारथी श्रमणोपासक हो गया। उसने जीव-अजीव पदार्थों का स्वरूप समझ लिया था, पुण्य-पाप के भेद जान लिया था, वह आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध, मोक्ष के स्वरूप को जाननेमें कुशल हो गया था, दूसरे की सहायता का अनिच्छुक था। देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवताओं द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से अनतिक्रमणीय था। निर्ग्रन्थ-प्रवचनमें निःशंक था, आत्मोत्थान के सिवाय अन्य आकांक्षा रहित था। विचिकित्सा रहित था, लब्धार्थ, ग्रहीतार्थ, विनिश्चितार्थ कर लिया था एवं अस्थि और मज्जा पर्यन्त धर्मानुराग से भरा वह, दूसरों को सम्बोधित करते कहता था कि-आयुष्मन् यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, यही परमार्थ है, इसके सिवाय अन्य अनर्थ हैं। उसका हृदय स्फटिक की तरह निर्मल हो गया। निर्ग्रन्थ श्रमणों का भिक्षा के निमित्त से उसके घर का द्वार अर्गलारहित था। सभी के घरों, यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी उसका प्रवेश शंकारहित होने से प्रीतिजनक था। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या एवं पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषधव्रत का समीचीन रूप से पालन करते हुए, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, निर्दोश अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, आसन, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोच्छन, औषध, भैषज से प्रतिलाभित करते हुए एवं यथाविधि ग्रहण किये हुए तपःकर्म से आत्मा को भावित जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं उस श्रावस्ती नगरी के राज्यकार्यों यावत् राज्यव्यवहारों का बारंबार अवलोकन करते हुए विचरने लगा

सूत्र - ५६

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने किसी समय महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत तैयार किया और चित्त सारथी को बुलाया । उससे कहा-हे चित्त ! तुम वापस सेयविया नगरी जाओ और महाप्रयोजनसाधक यावत् इस उपहार को प्रदेशी राजा के सन्मुख भेंट करना तथा मेरी ओर से विनयपूर्वक उनसे निवेदन करना कि आपने मेरे लिये जो संदेश भिजवाया है, उसे उसी प्रकार अवितथ, प्रमाणिक एवं असंदिग्ध रूप से स्वीकार करता हूँ । चित्त सारथी को सम्मानपूर्वक बिदा किया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा द्वारा बिदा किये गये चित्त सारथी ने उस महाप्रयोजन-साधक यावत् उपहार को ग्रहण किया यावत् जितशत्रु राजा के पास से रवाना होकर श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से नीकला । राजमार्ग पर स्थित अपने आवास में आया और उस महार्थक यावत् उपहार को एक ओर रखा । फिर स्नान किया, यावत् शरीर को विभूषित किया, कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर विशाल जनसमुदाय के साथ पैदल ही राजमार्ग स्थित आवासगृह से नीकला और श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से चलता हुआ जहाँ कोष्ठक चैत्य था, जहाँ केशी कुमारश्रमण बिराजमान थे, वहाँ आकर केशी कुमारश्रमण से धर्म सूनकर यावत् इस प्रकार निवेदन किया-भगवन् ! 'प्रदेशी राजा के लिए यह महार्थक यावत् उपहार ले जाओ' कहकर जितशत्रु राजा ने आज मुझे बिदा किया है । अत एव हे भदन्त ! मैं सेयविया नगरी लौट रहा हूँ । हे भदन्त ! सेयविया नगरी प्रासादीया, प्रतिरूपा है । अत एव हे भदन्त ! आप सेयविया नगरी में पधारने की कृपा करें ।

इस प्रकार से चित्त सारथी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी के कथन का आदर नहीं किया । वे मौन रहे । तब चित्त सारथी ने पुनः दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा-हे भदन्त ! प्रदेशी राजा के लिए महाप्रयोजन साधक उपहार देकर जितशत्रु राजा ने मुझे बिदा कर दिया है । अत एव आप वहाँ पधारने की अवश्य कृपा करें । चित्त सारथी द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से बिनती किये जाने पर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा-हे चित्त ! जैसे कोई एक कृष्णवर्ण एवं कृष्णप्रभा वाला वनखण्ड हो तो हे चित्त ! वह वनखण्ड अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि के गमन योग्य है, अथवा नहीं है? हाँ, भदन्त ! वह उनके गमन योग्य होता है ।

इसके पश्चात् पुनः केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से पूछा-और यदि उसी वनखण्ड में, हे चित्त ! उन बहुत-से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सर्प आदि प्राणियों के रक्त-माँस को खाने वाले भीलुंगा नामक पाप-शकुन रहते हों तो क्या वह वनखण्ड उन अनेक द्विपदों यावत् सरीसृपों के रहने योग्य हो सकता है ? चित्त ने उत्तर दिया-यह अर्थ समर्थ नहीं है । पुनः केशी कुमारश्रमण ने पूछा-क्यों ? क्योंकि भदन्त ! वह वनखण्ड उपसर्ग सहित होने से रहना योग्य नहीं है । इसी प्रकार हे चित्त ! तुम्हारी सेयविया नगरी कितनी ही अच्छी हो, परन्तु वहाँ भी प्रदेशी नामक राजा रहता है । वह अधार्मिक यावत् प्रजाजनों से राज-कर लेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन-पोषण और रक्षण नहीं करता है । अत एव हे चित्त ! मैं उस सेयविया नगरी में कैसे आ सकता हूँ ?

सूत्र - ५७

चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया-हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा से क्या करना है ? भगवन् ! सेयविया नगरी में दूसरे राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि बहुत से जन हैं, जो आप देवानुप्रिय को वंदन करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् आपकी पर्युपासना करेंगे । विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार से प्रतिलाभित करेंगे, तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रित करेंगे । हे चित्त ! ध्यान में रखेंगे ।

तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण को वंदना की, नमस्कार किया और कोष्ठक चैत्य से बाहर नीकला । जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ राजमार्ग पर स्थित अपना आवास था, वहाँ आया और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उनसे कहा-हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर लाओ । इसके बाद जिस प्रकार

पहले सेयविया नगरी से प्रस्थान किया था उसी प्रकार श्रावस्ती नगरी से नीकलकर यावत् जहाँ केकय-अर्ध देश था, उसमें जहाँ सेयविया नगरी थी और जहाँ उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ आ पहुँचा। वहाँ आकर उद्यानपालकों को बुलाकर इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! जब पार्श्वपत्य केशी नामक कुमारश्रमण श्रमणचर्या-नुसार अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहाँ पधारे तब तुम केशी कुमारश्रमण को वन्दना करना, नमस्कार करना। उन्हें यथाप्रतिरूप वसतिका की आज्ञा देना तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि के लिए उपनिमंत्रित करना और इसके बाद मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे वापस लौटाना। चित्त सारथी की इस आज्ञा को सूनकर वे उद्यानपालक हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसितहृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़ यावत्-उसकी आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

सूत्र - ५८

तत्पश्चात् चित्त सारथी सेयविया नगरी में आ पहुँचा। सेयविया नगरी के मध्य भाग में प्रविष्ट हुआ। जहाँ प्रदेशी राजा का भवन व बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, रथ से नीचे उतरा और उस महार्थक यावत् भेंट को लेकर जहाँ प्रदेशी राजा था, वहाँ पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ यावत् जय-विजय शब्दों से वधाकर प्रदेशी राजा के सन्मुख उस महार्थक यावत् उपस्थित किया। इसके बाद प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से वह महार्थक यावत् भेंट स्वीकार की और सत्कार-सम्मान करके चित्त सारथी को बिदा किया। चित्त सारथी हृष्ट यावत् विकसितहृदय हो प्रदेशी राजा के पास से नीकला और जहाँ चार घंटों वाले अश्वरथ, अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ तथा सेयविया नगरी के बीचों-बीच से गुजर कर अपने घर आया। रथ से नीचे उतरा। स्नान करके यावत् श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर जोर-जोर से बजाए जा रहे मृदंगों की ध्वनिपूर्वक उत्तम तरुणियों द्वारा किये जा रहे बत्तीस प्रकार के नाटकों आदि के नृत्य, गान और क्रीड़ा को सूनता, देखता और हर्षित होता हुआ मनोज्ञ शब्द, स्पर्श यावत् विचरने लगा।

सूत्र - ५९

तत्पश्चात् किसी समय प्रातिहारिक पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि उन-उनके स्वामियों को सौंपकर केशी कुमारश्रमण श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से बाहर नीकले। पाँच सौ अन्तेवासी अनगारों के साथ यावत् विहार करते हुए जहाँ केकयधर्म जनपद था, जहाँ सेयविया नगरी थी और उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ आए। यथाप्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। तत्पश्चात् सेयविया नगरी के शृंगाटकों आदि स्थानों पर लोगों में बातचीत होने लगी यावत् परिषद् वन्दना करने नीकली। वे उद्यानपालक भी इस संवाद को सूनकर और समझकर हर्षित, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसितहृदय होते हुए जहाँ केशी कुमारश्रमण थे, वहाँ आकर केशी कुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया एवं यथाप्रतिरूप अवग्रह प्रदान की। प्रातिहारिक यावत् संस्तारक आदि ग्रहण करने के लिये उपनिमंत्रित किया।

इसके बाद उन्होंने नाम एवं गोत्र पूछकर फिर एकान्त में वे परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार बातचीत करने लगे- 'देवानुप्रियो ! चित्त सारथी जिनके दर्शन की आकांक्षा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, स्पृहा करते हैं, अभिलाषा करते हैं, जिनका नाम, गोत्र सूनते ही हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हैं, ये वही केशी कुमारश्रमण पूर्वा-नुपूर्वी से गमन करते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव में विहार करते हुए यहाँ आये हैं, तथा इसी सेयविया नगरी के बाहर मृगवन उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके यावत् बिराजते हैं। अत एव देवानुप्रिय ! हम चलें और चित्त सारथी के प्रिय इस अर्थ को उनसे निवेदन करें। हमारा यह निवेदन उन्हें बहुत ही प्रिय लगेगा।' एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया। इसके बाद वे वहाँ आये जहाँ सेयविया नगरी, चित्त सारथी का घर तथा घर में जहाँ चित्त सारथी थे। वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ यावत् चित्त सारथी को बधाया और इस प्रकार निवेदन किया- देवानुप्रिय ! आपको जिनके दर्शन की ईच्छा है यावत् जिनके नाम एवं गोत्र को सूनकर आप हर्षित होते हैं, ऐसे केशी कुमारश्रमण पूर्वा-नुपूर्वी से विचरते हुए यहाँ पधार गए हैं यावत् विचर रहे हैं।

तब वह चित्त सारथी उन उद्यानपालकों से इस संवाद को सूनकर एवं हृदय में धारण कर हर्षित, संतुष्ट हुआ। चित्त में आनंदित हुआ, मन में प्रीति हुई। परम सौमनस्य को प्राप्त हुआ। हर्षातिरेक से विकसितहृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, पादपीठ से नीचे ऊतरा, पादुकाएं उतारी, एकशाटिक उत्तरासंग किया और मुकुलित हस्ताग्रहपूर्वक अंजलि करके जिस ओर केशी कुमारश्रमण बिराजमान थे, उस ओर सात-आठ डग चला और फिर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा-अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो यावत् सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य, मेरे धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो। उनकी मैं वन्दना करता हूँ। वहाँ बिराजमान वे भगवान् यहाँ विद्यमान मुझे देखें, इस प्रकार कहकर वंदन-नमस्कार किया।

इसके पश्चात् उन उद्यानपालकों का विपुल वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया तथा जीविकायोग्य विपुल प्रीतिदान देकर उन्हें बिदा किया। तदनन्तर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनको आज्ञा दी-शीघ्र ही तुम चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो यावत् हमें इसकी सूचना दो। तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् शीघ्र ही छत्र एवं ध्वजा-पताकाओं से शोभित रथ को उपस्थित कर आज्ञा वापस लौटाते हैं-कौटुम्बिक पुरुषों से रथ लाने की बात सूनकर एवं हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। चार घण्टों वाले रथ पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर विशाल सुभटों के समुदाय सहित खाना हुआ। वहाँ पहुँच कर पर्युपासना करने लगा। केशी कुमारश्रमण ने धर्मोपदेश दिया। इत्यादि पूर्ववत् जानना।

सूत्र - ६०

तत्पश्चात् धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित, सन्तुष्ट, चित्त में आनंदित, अनुरागी, परम सौम्य-भाव युक्त एवं हर्षातिरेक से विकसितहृदय होकर चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया-हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है, यावत् राजकर लेकर भी समीचीन रूप से अपने जनपद का पालन एवं रक्षण नहीं करता है। अत एव आप देवानुप्रिय ! यदि प्रदेशी राजा को धर्म का आख्यान करेंगे तो प्रदेशी राजा के लिए, साथ ही अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि के लिए तथा बहुत से श्रमणों, महाणों एवं भिक्षुओं आदि के लिए बहुत-बहुत गुणकारी होगा। यदि वह धर्मोपदेश प्रदेशी के लिए हितकर हो जाता है तो उससे जनपद को भी बहुत लाभ होगा।

सूत्र - ६१

केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाया-हे चित्त ! जीव निश्चय ही इन चार कारणों से केवलि-भाषित धर्म को सूनने का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है। १. आराम में अथवा उद्यान में स्थित श्रमण या माहन के अभिमुख जो नहीं जाता है, स्तुति, नमस्कार, सत्कार एवं सम्मान नहीं करता है तथा कल्याण, मंगल, देव एवं विशिष्ट ज्ञान स्वरूप मानकर जो उनकी पर्युपासना नहीं करता है; जो अर्थ, हेतुओं, प्रश्रियों को, कारणों को, व्याख्याओं को नहीं पूछता है, तो हे चित्त ! वह जीव केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सून नहीं पाता है। २. उपाश्रय में स्थित श्रमण आदि का वन्दन, यावत् उनसे व्याकरण नहीं पूछता, तो हे चित्त ! वह जीव केवलि-भाषित धर्म को सून नहीं पाता है। ३. गोचरी-गये हुए श्रमण अथवा माहन का सत्कार यावत् उनकी पर्युपासना नहीं करता तथा विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से उन्हें प्रतिलाभित नहीं करता, एवं शास्त्र के अर्थ यावत् व्याख्या को उनसे नहीं पूछता, तो चित्त ! केवली भगवान् द्वारा निरूपित धर्म को सून नहीं पाता है। ४. कहीं श्रमण या माहन का सुयोग मिल जाने पर भी वहाँ अपने आप को छिपाने के लिए, वस्त्र से, छत से स्वयं को आवृत्त कर लेता है, एवं उनसे अर्थ आदि नहीं पूछता है, तो हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म श्रवण करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकता है

उक्त चार कारणों से हे चित्त ! जीव केवलिभाषित धर्म श्रवण करने का लाभ नहीं ले पाता है, किन्तु हे चित्त ! इन चार कारणों से जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सूनने का अवसर प्राप्त कर सकता है। १. आराम अथवा

उद्यान में पधारे हुए श्रमण या माहन को जो वन्दन करता है, नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता है, अर्थो को यावत् पूछता है तो हे चित्त ! वह जीव केवलिप्ररूपित धर्म को सूनने का अवसर प्राप्त कर सकता है । २. इसी प्रकार जो जीव उपाश्रय में रहे हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सून सकता है । ३. इसी प्रकार जो जीव गोचरी के लिए गए हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता है यावत् उन्हें प्रतिलाभित करता है, वह जीव केवलिभाषित अर्थ को सूनने का अवसर प्राप्त कर सकता है । ४. इसी प्रकार जो जीव जहाँ कहीं श्रमण या माहन का सुयोग मिलने पर हाथों, वस्त्रों, छत्ता आदि से स्वयं को छिपाता नहीं है, हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म सूनने का लाभ प्राप्त कर सकता है । लेकिन हे चित्त ! तुम्हारा प्रदेशी राजा जब पधारे हुए श्रमण या माहन के सन्मुख ही नहीं आता है यावत् अपने को आच्छादित कर लेता है, तो मैं कैसे धर्म का उपदेश दे सकूँगा ?

चित्त सारथीने निवेदन किया-हे भदन्त ! किसी समय कम्बोज देशवासियोंने चार घोड़े उपहार रूप भेंट किये थे । मैंने उनको प्रदेशी राजा के यहाँ भिजवा दिया था, इन घोड़ों के बहाने मैं शीघ्र ही प्रदेशी राजा को आपके पास लाऊँगा । तब आप प्रदेशी राजा को धर्मकथा कहते हुए लेशमात्र ग्लानि मत करना । हे भदन्त ! आप अग्लानभाव से प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश देना । आप स्वेच्छानुसार धर्म का कथन करना । तब केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा-हे चित्त ! अवसर आने पर देखा जाएगा । तत्पश्चात् चित्त सारथीने केशी कुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया, चार घंटोंवाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ । जिस दिशा से आया था उसी ओर लौट गया

सूत्र - ६२

तत्पश्चात् कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने से जब कोमल उत्पल कमल विकसित हो चूके और धूप भी सुनहरी हो गई तब नियम एवं आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के चमकने के बाद चित्त सारथी अपने घर से नीकला । जहाँ प्रदेशी राजा था, वहाँ आया । दोनों हाथ जोड़ यावत् अंजलि करके जय-विजय शब्दों से प्रदेशी राजा का अभिनन्दन किया और बोला-कम्बोज देशवासियों ने देवानुप्रिय के लिए जो चार घोड़े उपहार-स्वरूप भेजे थे, उन्हें मैंने आप देवानुप्रिय के योग्य प्रशिक्षित कर दिया है । अत एव स्वामिन् ! पधारिए और उन घोड़ों की गति आदि चेष्टाओं का निरीक्षण कीजिए । तब प्रदेशी राजा ने कहा -हे चित्त ! तुम जाओ और उन्हीं चार घोड़ों को जोतकर अश्वरथ को यहाँ लाओ । चित्त सारथी प्रदेशी राजा के कथन को सूनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ । यावत् विकसितहृदय होते हुए उसने अश्वरथ उपस्थित किया और रथ ले आने की सूचना राजा को दी ।

तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा चित्त सारथी की बात सूनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने भवन से नीकला और आकर उस चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से नीकला । चित्त सारथी ने उस रथ को अनेक योजनों दूर तक बड़ी तेज चाल से दौड़ाया-तब गरमी, प्यास और रथ की चाल से लगती हवा से व्याकुल-परेशान-खिन्न होकर प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा-हे चित्त ! मेरा शरीर थक गया है । रथ को वापस लौटा लो । तब चित्त सारथी ने रथ को लौटाया और जहाँ मृगवन उद्यान था वहाँ आकर प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा-हे स्वामिन् ! यह मृगवन उद्यान है, यहाँ रथ को रोक कर हम घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को अच्छी तरह से दूर कर लें । इस पर प्रदेशी राजा ने कहा-हे चित्त ! ठीक, ऐसा ही करो ।

चित्त सारथी ने मृगवन उद्यान की ओर रथ को मोड़ा और फिर उस स्थान पर आया जो केशी कुमारश्रमण के निवासस्थान के पास था । वहाँ रथ को खड़ा किया, फिर घोड़ों को खोलकर प्रदेशी राजा से कहा-हे स्वामिन् ! हम यहाँ घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को दूर कर लें । यह सूनकर प्रदेशी राजा रथ से नीचे उतरा, और चित्त सारथी के साथ घोड़ों की थकावट और अपनी व्याकुलता को मिटाते हुए उस ओर देखा जहाँ केशी कुमारश्रमण अतिविशाल परिषद् को धर्मोपदेश कर रहे थे । यह देखकर उसे मन-ही-मन यह विचार एवं संकल्प उत्पन्न हुआ-

जड़ ही जड़ की पर्युपासना करते हैं। मुंड ही मुंड की, मूढ ही मूढों की, अपंडित ही अपंडित की, और अज्ञानी ही अज्ञानी की उपासना करते हैं ! परन्तु यह कौन पुरुष है जो जड़, मुंड, मूढ, अपंडित और अज्ञानी होते हुए भी श्री-ही से सम्पन्न है, शारीरिक कांति से सुशोभित है ? यह पुरुष किस प्रकार का आहार करता है ? किस रूप में खाये हुए भोजन को परिणामाता है ? यह क्या खाता है, क्या पीता है, लोगों को क्या देता है, समझाता है ? यह पुरुष इतने विशाल मानव-समूह के बीच बैठकर जोर-जोर से बोल रहा है और चित्त सारथी से कहा-चित्त ! जड़ पुरुष ही जड़ की पर्युपासना करते हैं आदि। यह कौन पुरुष है जो ऊंची ध्वनि से बोल रहा है ? इसके कारण हम अपनी ही उद्यानभूमि में भी ईच्छानुसार घूम नहीं सकते हैं।

तब चित्त सारथी ने कहा-स्वामिन् ! ये पार्श्वपत्य केशी कुमारश्रमण हैं, जो जातिसम्पन्न यावत् मतिज्ञान आदि चार ज्ञानोंके धारक हैं। ये आधोऽवधिज्ञान से सम्पन्न एवं अन्नजीवी हैं। तब प्रदेशी राजा ने कहा-हे चित्त ! यह पुरुष आधोऽवधिज्ञान-सम्पन्न और अन्नजीवी है ? चित्त-हाँ स्वामिन् ! हैं। प्रदेशी-हे चित्त ! तो क्या यह पुरुष अभिगमनीय है ? चित्त-हाँ स्वामिन्, प्रदेशी-तो फिर, चित्त ! इस पुरुषके पास चलें। चित्त-हाँ, स्वामिन् ! चलें।

सूत्र - ६३

तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा, जहाँ केशी कुमारश्रमण बिराजमान थे, वहाँ आया और केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर खड़े होकर बोला-हे भदन्त ! क्या आप आधोऽवधिज्ञानधारी हैं ? क्या आप अन्नजीवी हैं ? तब केशी कुमारश्रमण ने कहा-हे प्रदेशी ! जैसे कोई अंकवणिक् अथवा शंखवणिक्, दन्तवणिक्, राजकर न देने के विचार से सीधा मार्ग नहीं पूछता, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी विनयप्रतिपत्ति नहीं करने की भावना से प्रेरित होकर मुझसे योग्य रीति से नहीं पूछ रहे हो। हे प्रदेशी ! मुझे देखकर क्या तुम्हें यह विचार समुत्पन्न नहीं हुआ था, कि ये जड़ जड़ की पर्युपासना करते हैं, यावत् मैं अपनी ही भूमि में स्वेच्छापूर्वक घूम-फिर नहीं सकता हूँ ? प्रदेशी ! मेरा यह कथन सत्य है ? प्रदेशी-हाँ, आपका कथन सत्य है।

सूत्र - ६४

तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने कहा-भदन्त ! तुम्हें ऐसा कौन सा ज्ञान और दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना और देखा ? तब केशी कुमारश्रमण ने कहा-हे प्रदेशी ! निश्चय ही हम निर्ग्रन्थ श्रमणों के शास्त्रों में ज्ञान के पाँच प्रकार बतलाए हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यायज्ञान और केवलज्ञान। प्रदेशी-आभिनिबोधिक ज्ञान कितने प्रकार का है ? आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकार का है-अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। प्रदेशी-अवग्रह कितने प्रकार का है ? अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का प्रतिपादन किया है इत्यादि धारणा पर्यन्त आभिनिबोधिक ज्ञान का विवेचन नंदीसूत्र के अनुसार जानना। प्रदेशी-श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है ? श्रुतज्ञान दो प्रकार का है, यथा अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य। दृष्टिवाद पर्यन्त श्रुतज्ञान के भेदों का समस्त वर्णन नंदीसूत्र अनुसार।

भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का है। इनका विवेचन भी नंदीसूत्र अनुसार। मनःपर्यायज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा ऋजुमति और विपुलमति। नंदीसूत्र के अनुरूप इनका भी वर्णन करना। इसी प्रकार केवलज्ञान का भी वर्णन यहाँ करना। इन पाँच ज्ञानों में से आभिनिबोधिक ज्ञान मुझे है, श्रुतज्ञान मुझे है, अवधिज्ञान भी मुझे है, मनःपर्याय ज्ञान भी मुझे प्राप्त है, किन्तु केवलज्ञान प्राप्त नहीं है। वह केवलज्ञान अरिहंत भगवंतों को होता है। इन चतुर्विध छाद्मस्थिक ज्ञानों के द्वारा हे प्रदेशी ! मैंने तुम्हारे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना और देखा है।

सूत्र - ६५

प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया-भदन्त ! क्या मैं यहाँ बैठ जाऊँ ? हे प्रदेशी ! यह उद्यानभूमि तुम्हारी अपनी है, अत एव बैठने के विषय में तुम स्वयं समझ लो। तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमण के समीप बैठ गया और पूछा-भदन्त ! क्या आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा है,

प्रतिज्ञा है, दृष्टि है, रुचि है, हेतु है, उपदेश है, संकल्प है, तुला है, धारणा है, प्रमाणसंगत मंतव्य है और स्वीकृत सिद्धान्त है कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है ? शरीर और जीव दोनों एक नहीं है ? केशी कुमारश्रमण ने कहा- हे प्रदेशी ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् समोसरण है कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, परन्तु जो जीव है वही शरीर है, ऐसी धारणा नहीं है ।

तब प्रदेशी राजा ने कहा-हे भदन्त ! यदि आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् सिद्धान्त है, तो मेरे पितामह, जो इसी जम्बूद्वीप की सेयविया नगरी में अधार्मिक यावत् राजकर लेकर भी अपने जनपद का भली-भाँति पालन, रक्षण नहीं करते थे, वे आपके कथनानुसार पापकर्मों को उपार्जित करके मरण करके किसी एक नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुए हैं । उन पितामह का मैं इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का स्थान, कार्य करने में सम्मत तथा कार्य करने के बाद भी अनुमत्त, रत्नकरंडक के समान, जीवन की श्वासोच्छ्वास के समान, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला, गूलर के फूल के समान जिसका नाम सूनना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है, ऐसा पौत्र हूँ । इसलिए यदि मेरे पितामह आकर मुझे इस प्रकार कहे की- 'हे पौत्र ! मैं तुम्हारा पितामह था और इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक यावत् प्रजाजनों का रक्षण नहीं करता था । इस कारण मैं कलूषित पापकर्मों का संचय करके नरक में उत्पन्न हुआ हूँ । किन्तु हे पौत्र ! तुम अधार्मिक नहीं होना, प्रजाजनों से कर लेकर उनके पालन, रक्षण में प्रमाद मत करना और न बहुत से मलिन पापकर्मों का उपार्जन करना ।' तो मैं आपके कथन पर श्रद्धा कर सकता हूँ, प्रतीति कर सकता हूँ एवं उसे अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है । जीव और शरीर एक रूप नहीं हैं । लेकिन जब तक मेरे पितामह आकर मुझसे ऐसा नहीं कहते हैं तब तक हे आयुष्मन् श्रमण ! मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ।

केशी श्रमणकुमार ने कहा-हे प्रदेशी ! तुम्हारी सूर्यकान्ता नाम की रानी है ? प्रदेशी-हाँ, भदन्त ! है । तो हे प्रदेशी ! यदि तुम उस सूर्यकान्ता देवी को स्नान, बलिकर्म और कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके एवं समस्त आभरण-अलंकारों से विभूषित पुरुष के साथ इष्ट-मनोनुकूल शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधमूलक पाँच प्रकार के मानवीय कामभोगों को भोगते हुए देख लो तो, उस पुरुष के लिए तुम क्या दण्ड निश्चित करोगे ? हे भगवन् ! मैं उस पुरुष के हाथ काट दूँगा, उसे शूली पर चढ़ा दूँगा, काँटों से छेद दूँगा, पैर काट दूँगा अथवा एक ही वार से जीवनरहित कर दूँगा । हे प्रदेशी ! यदि वह पुरुष तुमसे यह कहे कि- 'हे स्वामिन् ! आप घड़ी भर रुक जाओ, तब तक आप मेरे हाथ न काँटें, यावत् मुझे जीवनरहित न करें जब तक मैं अपने मित्र, ज्ञातिजन, निजक और परिचितों से यह कह आऊँ कि हे देवानुप्रियो ! मैं इस प्रकार के पापकर्मों का आचरण करने के कारण यह दण्ड भोग रहा हूँ, अत एव हे देवानुप्रियो ! तुम कोई ऐसे पापकर्मों में प्रवृत्ति मत करना, जिससे तुमको इस प्रकार का दण्ड भोगना पड़े, जैसा कि मैं भोग रहा हूँ ।' तो हे प्रदेशी ! क्या तुम क्षणमात्र के लिए भी उस पुरुष की यह बात मानोगे ?

प्रदेशी-हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । केशी कुमारश्रमण-उसकी बात क्यों नहीं मानोगे ? क्योंकि हे भदन्त ! वह पुरुष अपराधी है । तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम्हारे पितामह भी हैं, जिन्होंने इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक होकर जीवन व्यतीत किया यावत् बहुत से पापकर्मों का उपार्जन करके नरक में उत्पन्न हुए हैं । उन्हीं पितामह के तुम इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभ पौत्र हो । यद्यपि वे शीघ्र ही मनुष्य लोक में आना चाहते हैं किन्तु वहाँ से आने में समर्थ नहीं हैं । क्योंकि-प्रदेशी ! तत्काल नरक में नारक रूप से उत्पन्न जीव शीघ्र ही चार कारणों से मनुष्य लोक में आने की ईच्छा तो करते हैं, किन्तु वहाँ से आ नहीं पाते हैं । १. नरक में अधुनोत्पन्न नारक वहाँ की तीव्र वेदना के वेदन के कारण, २. नरक में तत्काल नैरयिक रूप से उत्पन्न जीव परमाधार्मिक नरकपालों द्वारा बारंबार ताडित-प्रताडित किये जाने से, ३. अधुनोत्पन्न नारक मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा तो रखते हैं किन्तु नरक सम्बन्धी असातावेदनीय कर्म के क्षय नहीं होने, अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से, तथा ४. इसी प्रकार नरक संबंधी आयुर्कर्म क्षय नहीं होने से, अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से नारक जीव मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा

रखते हुए भी वहाँ से आ नहीं सकते हैं। अत एव हे प्रदेशी ! तुम इस बात पर विश्वास करो, श्रद्धा रखो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु यह मत मानो कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है।

सूत्र - ६६

पश्चात् प्रदेशी राजा ने कहा-हे भदन्त ! मेरी दादी थीं। वह इसी सेयविया नगरी में धर्मपरायण यावत् धार्मिक आचार-विचार पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने वाली, जीव-अजीव आदि तत्त्वों की ज्ञाता श्रमणोपासिक यावत् तप से आत्मा को भावित करती हुई अपना समय व्यतीत करती थी इत्यादि और आपके कथनानुसार वे पुण्य का उपार्जन कर कालमास में काल करके किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुई है। उन दादी का मैं इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभदर्शन पौत्र हूँ। अत एव वे आकर मुझसे कहें कि-हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी और इसी सेयविया नगरी में धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई यावत् अपना समय बिताती थी। इस कारण मैं विपुल पुण्य का संचय करके यावत् देवलोक में उत्पन्न हुई हूँ। हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक आचार-विचारपूर्वक अपना जीवन बीताओ। जिससे तुम भी विपुल पुण्य का उपार्जन करके यावत् देवरूप से उत्पन्न होओगे। इस प्रकार से यदि मेरी दादी आकर मुझसे कहें कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है किन्तु वही जीव वही शरीर नहीं, तो हे भदन्त ! मैं आपके कथन पर विश्वास कर सकता हूँ, प्रतीति कर सकता हूँ और अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ। परन्तु जब तक मेरी दादी आकर मुझसे नहीं कहतीं तब तक मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित एवं समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है। किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

केशी कुमारश्रमण ने पूछा-हे प्रदेशी ! यदि तुम स्नान, बलिकर्म और कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके गीली धोती पहन, झारी और धूपदान हाथ में लेकर देवकुल में प्रविष्ट हो रहे हो और उस समय कोई पुरुष विष्ठागृह में खड़े होकर यह कहे कि-हे स्वामिन् ! आओ और क्षणमात्र के लिए यहाँ बैठो, खड़े होओ और लेटो, तो क्या हे प्रदेशी ! एक क्षण के लिए भी तुम उस पुरुष की बात स्वीकार कर लोगे ? हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, कुमारश्रमण केशीस्वामी-उस पुरुष की बात क्यों स्वीकार नहीं करोगे ? क्योंकि भदन्त ! वह स्थान अपवित्र है और अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ-तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! इसी सेयविया नगरी में तुम्हारी जो दादी धार्मिक यावत् देवलोक में उत्पन्न हुई हैं तथा उन्हीं दादी के तुम इष्ट यावत् दुर्लभदर्शन जैसे पौत्र हो। वे तुम्हारी दादी भी शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की अभिलाषी हैं किन्तु आ नहीं सकतीं।

हे प्रदेशी ! अधुनोत्पन्न देव देवलोक से मनुष्यलोक में आने के आकांक्षी होते हुए भी इन चार कारणों से आ नहीं पाते हैं-१. तत्काल उत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने में माननीय भोगों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं, न ध्यान देते हैं और न उनकी इच्छा करते हैं। २. देवलोक संबंधी दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाने से अधुनोत्पन्नक देव का मनुष्य संबंधी प्रेम व्यवच्छिन्न सा हो जाता है और देवलोक संबंधी अनुराग संक्रांत हो जाता है। ३. अधुनोत्पन्न देव देवलोक में जब दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाते हैं तब वे सोचते हैं कि अब जाऊँ, अब जाऊँ, कुछ समय बाद जाऊँगा, किन्तु उतने समय में तो उनके इस मनुष्यलोक के अल्पआयुषी संबंधी कालधर्म को प्राप्त हो चूकते हैं। ४. वे अधुनोत्पन्नक देव देवलोक के दिव्य कामभोगों में यावत् तल्लीन हो जाते हैं कि जिससे उनको मर्त्यलोक संबंधी अतिशय तीव्र दुर्गन्ध प्रतिकूल और अनिष्टकर लगती है एवं उस मानवीय कुत्सित दुर्गन्ध के ऊपर आकाश में चार-पाँच सौ योजन तक फैल जाने से मनुष्यलोक में आने की ईच्छा रखते हुए भी वे आन में असमर्थ हो जाते हैं। अत एव हे प्रदेशी ! मनुष्यलोक में आने के ईच्छुक होने पर भी इन चार कारणों से अधुनोत्पन्न देव देवलोक से यहाँ आ नहीं सकते हैं। इसलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नहीं है और न शरीर जीव है।

सूत्र - ६७

राजा प्रदेशी ने कहा-हे भदन्त ! जीव और शरीर की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए अपने देवों के नहीं

आने के कारण रूप में जो उपमा दी, वह तु बुद्धि से कल्पित एक दृष्टान्त मात्र है। परन्तु भदन्त ! किसी एक दिन मैं अपने अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुम्बिक, इब्भ, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नागरिक, व्यापारी, दूत, संधिपाल आदि के साथ अपनी बाह्य उपस्थानशाला में बैठा हुआ था। उसी समय नगर-रक्षक चुराई हुई वस्तु और साक्षी सहित गरदन और पीछे दोनों हाथ बांधे एक चोर को पकड़ कर मेरे सामने लाये। तब मैंने उसे जीवित ही एक लोहे की कुंबी में बंद करवा कर अच्छी तरह लोहे के ढक्कन से उसका मुख ढँक दिया। फिर गरम लोहे एवं रांगे से उस पर लेप करा दिया और देखरेख के लिए अपने विश्वासपात्र पुरुषों को नियुक्त कर दिया।

तत्पश्चात् किसी दिन मैं उस लोहे की कुंबी के पास गया। कुंबी को खुलवाया। मैंने स्वयं उस पुरुष को देखा तो वह मर चूका था। किन्तु उस लोह कुंबी में राई जितना न कोई छेद था, न कोई विवर था, न कोई अंतर था और न कोई दरार थी कि जिस में से उस पुरुष का जीव बाहर निकल जाता। यदि उस लोहकुंबी में कोई छिद्र यावत् दरार होती तो हे भदन्त ! मैं यह मान लेता कि भीतर बंद पुरुष का जीव बाहर निकल गया है तब आपकी बात पर विश्वास कर लेता, प्रतीति कर लेता एवं अपनी रुचि का विषय बना लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव शरीर रूप नहीं और शरीर जीव रूप नहीं। लेकिन उस लोहकुंबीमें जब कोई छिद्र ही नहीं है यावत् जीव नहीं है तो हे भदन्त ! मेरा यह मंतव्य ठीक है जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है

केशी कुमारश्रमण ने कहा-जैसे कोई कूटाकारशाला हो और वह भीतर-बाहर चारों ओर लीपी हुई हो, अच्छी तरह से आच्छादित हो, उसका द्वार भी गुप्त हो और हवा का प्रवेश भी जिसमें नहीं हो सके, ऐसी गहरी हो। अब यदि उस कूटाकारशाला में कोई पुरुष भेरी और बजाने के लिए डंडा लेकर घूस जाए और घूसकर उस कूटाकारशाला के द्वार आदि को चारों ओर से बंद कर दे कि जिससे कहीं पर भी थोड़ा-सा अंतर नहीं रहे और उसके बाद उस कूटाकारशाला के बीचों-बीच खड़े होकर डंडे से भेरी को जोर-जोर से बजाए तो हे प्रदेशी ! तुम्हीं बताओ कि वह भीतर की आवाज बाहर निकलती है अथवा नहीं ? हाँ, भदन्त ! निकलती है। हे प्रदेशी ! क्या उस कूटाकारशाला में कोई छिद्र यावत् दरार है कि जिसमें से वह शब्द बाहर निकलता हो ? हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गति वाला है। वह पृथ्वी का भेदन कर, शिला का भेदन कर, पर्वत का भेदन कर भीतर से बाहर निकल जाता है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो की जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है।

प्रदेशी राजा ने कहा-भदन्त ! यह आप द्वारा प्रयुक्त उपमा तो बुद्धिविशेष रूप है, इससे मेरे मन में जीव और शरीर की भिन्नता का विचार युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि किसी समय मैं अपनी बाहरी उपस्थानशाला में गणनायक आदि के साथ बैठा था। तब मेरे नगररक्षकों ने साक्षी सहित यावत् एक चोर पुरुष को उपस्थित किया। मैंने उस पुरुष को प्राणरहित कर दिया और लोहकुंबी में डलवा दिया, ढक्कन से ढँक दिया यावत् अपने विश्वासपात्र पुरुषों को रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। बाद किसी दिन जहाँ वह कुंबी थी, मैं वहाँ आया। उस लोहकुंबी को उघाड़ा तो उसे कृमिकुल से व्याप्त देखा। लेकिन उस लोहकुंबी में न तो कोई छेद था, न कोई दरार थी कि जिसमें से वे जीव बाहर से उसमें प्रविष्ट हो सके। यदि उस लोहकुंबी में कोई छेद होता यावत् दरार होती तो यह माना जा सकता था-वे जीव उसमें से होकर कुंबी में प्रविष्ट हुए हैं और तब मैं श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है। लेकिन जब उस लोहकुंबी में कोई छेद आदि नहीं थे, फिर भी उसमें जीव प्रविष्ट हो गए। अतः मेरी यह प्रतीति सुप्रतिष्ठित है कि जीव और शरीर एक ही हैं।

केशी कुमारश्रमण ने कहा-हे प्रदेशी ! क्या तुमने पहले कभी अग्नि से तपाया हुआ लोहा देखा है ? हाँ, भदन्त ! देखा है। तब हे प्रदेशी ! तपाये जाने पर वह लोहा पूर्णतया अग्नि रूप में परिणत हो जाता है या नहीं ? हाँ, हो जाता है। हे प्रदेशी ! उस लोहे में कोई छिद्र आदि हैं क्या, जिससे वह अग्नि बाहर से उसके भीतर प्रविष्ट हो गई ? भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गतिवाला है, जिससे वह

पृथ्वी, शिला आदि का भेदन करके बाहर से भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम इस बात की श्रद्धा करो कि जीव और शरीर भिन्न हैं।

सूत्र - ६८

प्रदेशी राजा ने केशीकुमारश्रमण से कहा-बुद्धि-विशेषजन्य होने से आपकी उपमा वास्तविक नहीं है। किन्तु जो कारण मैं बता रहा हूँ, उससे जीव और शरीर की भिन्नता सिद्ध नहीं होती है। हे भदन्त ! जैसे कोई एक तरुण यावत् और अपना कार्य सिद्ध करने में निपुण पुरुष क्या एक साथ पाँच बाणों को नीकालने में समर्थ है ? केशी कुमारश्रमण-हाँ, वह समर्थ है। प्रदेशी-लेकिन वही पुरुष यदि बाल यावत् मंदविज्ञान वाला होते हुए भी पाँच बाणों को एक साथ नीकालने में समर्थ होता तो हे भदन्त ! मैं यह श्रद्धा कर सकता था कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर नहीं है। लेकिन वही बाल, मंदविज्ञान वाला पुरुष पाँच बाणों को एक साथ नीकालने में समर्थ नहीं है, इसलिए भदन्त ! मेरी यह धारणा की जीव और शरीर एक ही हैं, जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, सुप्रतिष्ठित, सुसंगत है।

केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा-जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्य करने में निपुण पुरुष नवीन धनुष, नई प्रत्यंचा और नवीन बाण से क्या एक साथ पाँच बाण नीकालने में समर्थ है ? प्रदेशी-हाँ, समर्थ है। केशी कुमारश्रमण-लेकिन वही तरुण यावत् कार्यकुशल पुरुष जीर्ण-शीर्ण, पुराने धनुष, जीर्ण प्रत्यंचा और वैसे ही जीर्ण बाण से क्या एक साथ पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ? भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। केशी कुमारश्रमण-क्या कारण है कि जिससे यह समर्थ नहीं है ? भदन्त ! उस पुरुष के पास उपकरण अपर्याप्त हैं। तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह बाल यावत् मंदविज्ञान पुरुष योग्यता रूप उपकरण की अपर्याप्तता के कारण एक साथ पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ नहीं हो पाता है। अतः प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा-प्रतीति करो कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं, जीव शरीर नहीं और शरीर जीव नहीं है।

सूत्र - ६९

प्रदेशी राजा ने कहा-हे भदन्त ! यह तो प्रज्ञाजन्य उपमा है। किन्तु मेरे द्वारा प्रस्तुत हेतु से तो यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर में भेद नहीं है। भदन्त ! कोई एक तरुण यावत् कार्यक्षम पुरुष एक विशाल वजनदार लोहे के भार की, सीसे के भार को या रांगे के भार को उठाने में समर्थ है ? केशी कुमारश्रमण-हाँ, समर्थ है। लेकिन भदन्त ! जब वही पुरुष वृद्ध हो जाए और वृद्धावस्था के कारण शरीर जर्जरित, शिथिल, झुरियों वाला एवं अशक्त हो, चलते समय सहारे के लिए हाथ में लकड़ी ले, दंतपंक्ति में से बहुत से दांत गिर चूके हों, खाँसी, श्वास आदि रोगों से पीड़ित होने के कारण कमझोर हो, भूख-प्यास से व्याकुल रहता हो, दुर्बल और क्लान्त हो तो उस वजनदार लोहे के भार को, रांगे के भार को अथवा सीसे के भार को उठाने में समर्थ नहीं हो पाता है। हे भदन्त ! यदि वही पुरुष वृद्ध, जरा-जर्जरित शरीर यावत् परिक्लान्त होने पर भी उस विशाल लोहे के भार आदि को उठाने में समर्थ हो तो मैं यह विश्वास कर सकता था कि जीव शरीर से भिन्न है और शरीर जीव से भिन्न है, जीव और शरीर एक नहीं है। अतः मेरी यह धारणा सुसंगत है कि जीव और शरीर दोनों एक ही हैं, किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं है।

केशी कुमारश्रमण ने कहा-जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्यनिपुण पुरुष नवीन कावड़ से, रस्सी से बने नवीन सींके से और नवीन टोकनी से एक बहुत बड़े, वजनदार लोहे के भार को यावत् वहन करने में समर्थ है ? प्रदेशी-हाँ समर्थ है। हे प्रदेशी ! वही तरुण यावत् कार्यकुशल पुरुष क्या सड़ी-गली, पुरानी, कमझोर, घुन से खाई हुई कावड़ से जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, दीमक के खाये एवं ढीले-ढाले सींके से, और पुराने, कमझोर और दीमक लगे टोकरे से एक बड़े वजनदार लोहे के भार आदि को ले जाने में समर्थ है ? हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्यों समर्थ नहीं है ? क्योंकि भदन्त ! उस पुरुष के पास भारवहन करने के उपकरण जीर्णशीर्ण है। तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह पुरुष जीर्ण यावत् क्लान्त शरीर आदि उपकरणों वाली होने से एक भारी वजनदार लोहे के भार को

यावत् वहन करने में समर्थ नहीं है। इसीलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं।

सूत्र - ७०

हे भदन्त ! आपकी यह उपमा वास्तविक नहीं है, इससे जीव और शरीर की भिन्नता नहीं मानी जा सकती है। लेकिन जो प्रत्यक्ष कारण मैं बताता हूँ, उससे यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर एक ही हैं। हे भदन्त ! किसी एक दिन मैं गणनायक आदि के साथ बाहरी उपस्थानशाला में बैठा था। उसी समय मेरे नगररक्षक चोर पकड़ कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को जीवित अवस्था में तोला। तोलकर फिर मैंने अंगभंग किये बिना ही उसको जीवन रहित कर दिया-फिर मैंने उसे तोला। उस पुरुष का जीवित रहते जो तोल था उतना ही मरने के बाद था। किसी भी प्रकार का अंतर दिखाई नहीं दिया, न उसका भार बढ़ा और न कम हुआ, इसलिए हे भदन्त ! यदि उस पुरुष के जीवितावस्था के वजन से मृतावस्था के वजन में किसी प्रकार की न्यूनाधिकता हो जाती, तो मैं इस बात पर श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नहीं है। लेकिन भदन्त ! मैंने उस पुरुष की जीवित और मृत अवस्थामें किये गये तोल में किसी प्रकार की भिन्नता, न्यूनाधिकता यावत् लघुता नहीं देखी। इस कारण मेरा यह मानना समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं है।

केशी कुमारश्रमण ने कहा-प्रदेशी ! तुमने कभी धींकनी में हवा भरी है? प्रदेशी-हाँ भदन्त ! हे प्रदेशी ! जब वायु से भर कर उस धींकनी को तोला तब और वायु को नीकाल कर तोला तब तुमको उसके वजन में कुछ न्यूनाधिकता यावत् लघुता मालूम हुई ? भदन्त ! यह अर्थ तो समर्थ नहीं है। तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव के अगुरुलघुत्व को समझ कर उस चोर के शरीर के जीवितावस्था में किये गये तोल में और मृतावस्था में किये गये तोल में कुछ भी नानात्व यावत् लघुत्व नहीं है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव-शरीर एक नहीं है।

सूत्र - ७१

प्रदेशी राजा ने पुनः कहा-हे भदन्त ! आपकी यह उपमा बुद्धिप्रेरित होने से वास्तविक नहीं है। इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं। क्योंकि भदन्त ! बात यह है कि किसी समय मैं अपने गणनायकों आदि के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा था। यावत् नगररक्षक एक चोर पकड़ कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को सभी ओर से अच्छी तरह देखा, परन्तु उसमें मुझे कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया। इसके बाद मैंने उस पुरुष के दो टुकड़े कर दिये। टुकड़े करके फिर मैंने अच्छी तरह सभी ओर से देखा। तब भी मुझे जीव नहीं दिखा। इसके बाद मैंने उसके तीन, चार यावत् संख्यात टुकड़े किये, परन्तु उनमें भी मुझे कहीं पर जीव दिखाई नहीं दिया। यदि भदन्त ! मुझे टुकड़े करने पर भी कहीं जीव दिखता तो मैं श्रद्धा-विश्वास कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नहीं है। लेकिन हे भदन्त ! जब मैंने उस पुरुष के टुकड़ों में भी जीव नहीं देखा है तो मेरी यह धारणा कि जीव शरीर है और शरीर जीव है, जीव-शरीर भिन्न-भिन्न नहीं है, सुसंगत है।

केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा-हे प्रदेशी ! तुम तो मुझे उस दीन-हीन कठियारे से भी अधिक मूढ़ प्रतीत होते हो। हे भदन्त ! कौन सा दीन-हीन कठियारा ? हे प्रदेशी ! वन में रहने वाले और वन से आजीविका कमाने वाले कुछ-एक पुरुष वनोत्पन्न वस्तुओं की खोज में आग और अंगीठी लेकर लकड़ियों के वन में प्रविष्ट हुए। पश्चात् उन पुरुषों ने दुर्गम वन के किसी प्रदेश में पहुँचने पर अपने एक साथी से कहा-देवानुप्रिय ! हम इस लकड़ियों के जंगल में जाते हैं। तुम यहाँ अंगीठी से आग लेकर हमारे लिये भोजन तैयार करना। यदि अंगीठी में आग बुझ जाए तो तुम इस लकड़ी से आग पैदा करके हमारे लिए भोजन बना लेना। उनके चले जाने पर कुछ समय पश्चात् उस पुरुष ने विचार किया-चलो उन लोगों के लिए जल्दी से भोजन बना लूँ। ऐसा विचार कर वह वहाँ पहुँचा जहाँ वह काष्ठ पड़ा हुआ था। वहाँ पहुँचकर चारों ओर से उसने काष्ठ को अच्छी तरह देखा,

किन्तु कहीं भी उसे आग दिखाई नहीं दी। तब उस पुरुष ने कमर कसी और कुल्हाड़ी लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये। फिर उन टुकड़ों को भी सभी ओर से अच्छी तरह देखा, किन्तु कहीं आग दिखाई नहीं दी। इसी प्रकार फिर तीन, चार, पाँच यावत् संख्यात टुकड़े किये परन्तु देखने पर भी उनमें कहीं आग दिखाई नहीं दी।

इसके बाद जब उस पुरुष को काष्ठ के दो से लेकर असंख्यात टुकड़े करने पर भी कहीं आग दिखाई नहीं दी तो वह श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दुःखित हो, कुल्हाड़ी को एक ओर रख और कमर को खोलकर मन-ही-मन इस प्रकार बोला-अरे ! मैं उन लोगों के लिए भोजन नहीं बना सका। अब क्या करूँ। इस विचार से अत्यन्त निराश, दुःखी, चिन्तित, शोकातूर हो हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यानपूर्वक नीचे जमीन में आँखे गाड़कर चिन्ता में डूब गया। लकड़ियों को काटने के पश्चात् वे लोग वहाँ आए जहाँ अपना साथी था और उसको निराश, दुःखी यावत् चिन्ताग्रस्त देखकर उससे पूछा-देवानुप्रियो ! तुम क्यों निराश, दुःखी यावत् चिन्ता में डूबे हुए हो ? तब उस पुरुष ने बताया कि देवानुप्रियो ! आप लोगों ने मुझसे कहा था, यावत् जंगल में चले गए। कुछ समय बाद मैंने विचार किया कि आप लोगों के लिए भोजन बना लूँ। ऐसा विचार कर जहाँ अंगीठी थी, वहाँ पहुँचा यावत् आर्तध्यान कर रहा हूँ। उन मनुष्यों में कोई एक छेक, दक्ष, प्राप्तार्थ यावत् उपदेश लब्ध पुरुष था। उस पुरुष ने अपने दूसरे साथी लोगों से इस प्रकार कहा-

हे देवानुप्रियो ! आप जाओ और स्नान, बलिकर्म आदि करके शीघ्र आ जाओ। तब तक मैं आप लोगों के लिए भोजन तैयार करता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी, कुल्हाड़ी लेकर सर बनाया, सर से अरणि-काष्ठ को रगड़कर आग की चिनगारी प्रगट की। फिर उसे धौंक कर सुलगाया और फिर उन लोगों के लिए भोजन बनाया। इतने में स्नान आदि करने गए पुरुष वापस स्नान करके, बलिकर्म करके यावत् प्रायश्चित्त करके उस भोजन बनाने वाले पुरुष के पास आ गए। तत्पश्चात् उस पुरुष ने सुखपूर्वक अपने-अपने आसनों पर बैठे उन लोगों के सामने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन रखा। वे उस विपुल अशन आदि रूप चारों प्रकार के भोजन का स्वाद लेते हुए, खाते हुए यावत् विचरने लगे। भोजन के बाद आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, शुद्ध होकर अपने पहले साथी से इस प्रकार बोले-हे देवानुप्रियो ! तुम जड़-अनभिज्ञ, मूढ़, अपंडित, निर्विज्ञान और अनुपदेशलब्ध हो, जो तुमने काठ के टुकड़ों में आग देखना चाहा। इसी प्रकार की तुम्हारी भी प्रवृत्ति देखकर मैंने यह कहा-हे प्रदेशी ! तुम उस तुच्छ कठियारे से भी अधिक मूढ़ हो कि शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके जीव को देखना चाहते हो।

सूत्र - ७२

प्रदेशी राजा ने कहा-भन्ते ! आप जैसे छेक, दक्ष, बुद्ध, कुशल, बुद्धिमान्, विनीत, विशिष्ट ज्ञानी, विवेक संपन्न, उपदेशलब्ध पुरुष का इस अति विशाल परिषद् के बीच मेरे लिए इस प्रकार के निष्ठुर शब्दों का प्रयोग करना, मेरी भर्त्सना करना, मुझे प्रताड़ित करना, धमकाना क्या उचित है ?

केशी कुमारश्रमण ने कहा-हे प्रदेशी ! जानते हो कि कितनी परिषदायें कही गई हैं ? प्रदेशी-जी हाँ, जानता हूँ चार परिषदायें हैं-क्षत्रिय, गाथापति, ब्राह्मण और ऋषि परिषदा। प्रदेशी ! तुम यह भी जानते हो कि इन चार परिषदाओं के अपराधियों के लिए क्या दण्डनीति बताई गई है ? प्रदेशी-हाँ, जानता हूँ। जो क्षत्रिय-परिषद् का अपराध करता है, उसके या तो हाथ, पैर या शिर काट दिया जाता है, अथवा उसे शूली पर चढ़ा देते हैं या एक ही प्रहार से या कूचलकर प्राणरिहत कर दिया जाता है-जो गाथापति-परिषद् का अपराध करता है, उसे घास से अथवा पेड़ के पत्तों से अथवा पलाल-पुआल से लपेट कर अग्नि में झोंक दिया जाता है। जो ब्राह्मण-परिषद् का अपराध करता है, उसे अनिष्ट, रोषपूर्ण, अप्रिय या अमणाम शब्दों से उपालम्भ देकर अग्निपत्त लोहे से कुंडिका चिह्न अथवा कुत्ते के चिह्न से लांछित कर दिया जाता है अथवा निर्वासित कर दिया जाता है। जो ऋषि-परिषद् का अपमान करता है, उसे न अति अनिष्ट यावत् न अति अमनोज्ञ शब्दों द्वारा उपालम्भ दिया जाता है। केशी कुमारश्रमण-इस प्रकार की दण्डनीति को जानते हुए भी हे प्रदेशी ! तुम मेरे प्रति विपरीत, परितापजनक, प्रतिकूल,

विरुद्ध, सर्वथा विपरीत व्यवहार कर रहे हो ।

तब प्रदेशी राजा ने कहा-भदन्त ! मेरा आप देवानुप्रिय से जब प्रथम ही वार्तालाप हुआ तभी मेरे मन में इस प्रकार का विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि जितना-जितना और जैसे-जैसे मैं इस पुरुष के विपरीत यावत् सर्वथा विपरीत व्यवहार करूँगा, उतना-उतना और वैसे-वैसे मैं अधिक तत्त्व को जानूँगा, ज्ञान प्राप्त करूँगा, चारित्र को, चारित्रलाभ को, सम्यक्त्व को, सम्यक्त्व लाभ को, जीव को, जीव के स्वरूप को समझ सकूँगा । इसी कारण आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने विपरीत यावत् अत्यन्त विरुद्ध व्यवहार किया है । केशी कुमारश्रमण ने कहा-हे प्रदेशी! जानते हो तुम कि व्यवहारकर्ता कितने प्रकार के बतलाए गए हैं ?

हाँ, भदन्त ! जानता हूँ कि व्यवहार-कारकों के चार प्रकार हैं-१. कोई किसी को दान देता है, किन्तु उसके साथ प्रीतिजनक वाणी नहीं बोलता । २. कोई संतोषप्रद बातें तो करता है, किन्तु देता नहीं है । ३. कोई देता भी है और लेने वाले के साथ संतोषप्रद वार्तालाप भी करता है और ४. कोई देता भी कुछ नहीं और न संतोषप्रद बात करता है । हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि इन चार प्रकार के व्यक्तियों में से कौन व्यवहारकुशल है और कौन व्यवहारशून्य है ? प्रदेशी-हाँ, जानता हूँ । इनमें से जो पुरुष देता है, किन्तु संभाषण नहीं करता, वह व्यवहारी है । जो पुरुष देता नहीं किन्तु सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न करता है, वह व्यवहारी है । जो पुरुष देता भी है और शिष्ट वचन भी कहता है, वह व्यवहारी है, किन्तु जो न देता है और न मधुर वाणी बोलता है, वह अव्यवहारी है । उसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी व्यवहारी हो, अव्यवहारी नहीं हो ।

सूत्र - ७३

प्रदेशी राजा ने कहा-हे भदन्त ! आप अवसर को जानने में निपुण हैं, कार्यकुशल हैं यावत् आपने गुरु से शिक्षा प्राप्त की है तो भदन्त ! क्या आप मुझे हथेली में स्थित आँबले की तरह शरीर से बाहर जीव को नीकालकर दिखाने में समर्थ हैं ? प्रदेशी राजा ने यह कहा, उसी काल और उसी समय प्रदेशी राजा से अति दूर नहीं अर्थात् निकट ही हवा चलने से तृण-घास, वृक्ष आदि वनस्पतियाँ हिलने-डुलने लगी, कंपने लगी, फरकने लगी, परस्पर टकराने लगी, अनेक विभिन्न रूपोंमें परिणत होने लगी । तब केशी कुमारश्रमण ने पूछा-हे प्रदेशी ! तुम इन तृणादि वनस्पतियों हिलते-डूलते यावत् उन-उन अनेक रूपों में परिणत होते देख रहे हो ? प्रदेशी-हाँ, देख रहा हूँ

तो प्रदेशी ! क्या तुम यह भी जानते हो कि इन तृण-वनस्पतियों को कोई देव हिला रहा है अथवा असुर हिला रहा है अथवा कोई नाग, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गंधर्व हिला रहा है । प्रदेशी-हाँ, भदन्त ! जानता हूँ । इनको न कोई देव, यावत् न गंधर्व हिला रहा है । यह वायु से हिल-डुल रही है । हे प्रदेशी ! क्या तुम उस मूर्त, काम, राग, मोह, वेद, लेश्या और धारी वायु के रूप को देखते हो ? प्रदेशी-यह अर्थ समर्थ नहीं है । जब राजन् ! तुम इस रूपधारी यावत् सशरीर वायु के रूप को भी नहीं देख सकते तो प्रदेशी ! इन्द्रियातीत ऐसे अमूर्त जीव को हाथ में रखे आँबले की तरह कैसे देख सकते हो ? क्योंकि प्रदेशी ! छद्मस्थ मनुष्य इन दस वस्तुओं को उनके सर्व भावों-पर्यायों सह जानते-देखती नहीं हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीरीजीव, परमाणु पुद्गल, शब्द, गंध, वायु, यह जिन होगा या जिन नहीं होगा और यह समस्त दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हन्त, जिन, केवली इन दस बातों को उनकी समस्त पर्यायों सहित जानते-देखते हैं, इसलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नहीं हैं ।

सूत्र - ७४

प्रदेशी राजा ने कहा-भन्ते ! क्या हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है ? हाँ, प्रदेशी ! हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है, प्रदेशी-हे भदन्त ! हाथी से कुंथु अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्प प्राणातिपात आदि आश्रव वाला है, और इसी प्रकार कुंथु का आहार, निहार, श्वासोच्छ्वास, ऋद्धि, द्युति आदि भी अल्प है और कुंथु से हाथी अधिक कर्म वाला, अधिक क्रिया वाला यावत् अधिक द्युति संपन्न है ? हाँ प्रदेशी ! ऐसा ही है । हाथी से कुंथु अल्प कर्म वाला और कुंथु से हाथी महाकर्म वाला है ।

प्रदेशी-तो फिर भदन्त ! हाथी और कुंथु का जीव समान परिमाण वाला कैसे हो सकता है ? केशी कुमार-श्रमण-हाथी और कुंथु के जीव को समान परिमाण वाला ऐसे समझा जा सकता है-हे प्रदेशी ! जैसे कोई कूटाकार यावत् विशाल एक शाला हो और कोई एक पुरुष उस कूटाकारशाला में अग्नि और दीपक के साथ घूसकर उसके ठीक मध्यभाग में खड़ा हो जाए । तत्पश्चात् उस कूटाकारशाला के सभी द्वारों के किवाड़ों को इस प्रकार सटाकर अच्छी तरह बंद कर दे कि उनमें किंचिन्मात्र भी सांध न रहे । फिर उस कूटाकारशाला के बीचोंबीच उस प्रदीप को जलाये तो जलाने पर वह दीपक उस कूटाकारशाला के अन्तर्वर्ती भाग को ही प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, किन्तु बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करता है ।

अब यदि वही पुरुष उस दीपक को एक विशाल पिटारे से ढंक दे तो वह दीपक कूटाकार-शाला की तरह उस पिटारे के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा किन्तु पिटारे के बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करेगा । इसी तरह गोकलेंज, पच्छिकापिटक, गंडमाणिका, आढक, अर्धाढक, प्रस्थक, अर्धप्रस्थक, कुलव, अर्धकुलव, चतुर्भागिका, अष्टभागिका, षोडशिका, द्वात्रिंशतिका, चतुष्षष्टिका अथवा दीपचम्पक से ढंके तो वह दीपक उस ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा, ढक्कन के बाहरी भाग को नहीं और न चतुष्षष्टिका के बाहरी भाग को, न कूटाकारशाला को, न कूटाकारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित करेगा । इसी प्रकार हे प्रदेशी ! पूर्वभवोपार्जित कर्म के निमित्त से जीव को क्षुद्र अथवा महत् जैसे भी शरीर को निष्पत्ति होती है, उसी के अनुसार आत्मप्रदेशों को संकुचित और विस्तृत करने के स्वभाव के कारण वह उस शरीर को अपने असंख्यात आत्मप्रदेशों द्वारा सचित्त व्याप्त करता है । अत एव प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर भी अन्य है, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है ।

सूत्र - ७५

प्रदेशी राजा ने कहा-भदन्त ! आपने बताया सो ठीक, किन्तु मेरे पितामह की यही ज्ञानरूप संज्ञा थी यावत् समवसरण था कि जो जीव है वही शरीर है, जो शरीर है वही जीव है । जीव शरीर से भिन्न नहीं और शरीर जीव से भिन्न नहीं है । तत्पश्चात् मेरे पिता की भी ऐसी ही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण था और उनके बाद मेरी भी यही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण है । तो फिर अनेक पुरुषों एवं कुलपरंपरा से चली आ रही अपनी दृष्टि को कैसे छोड़ दूँ ? केशी कुमारश्रमण-हे प्रदेशी ! तुम उस अयोहारक की तरह पश्चात्ताप करने वाले मत होओ । भदन्त! वह अयोहारक कौन था और उसे क्यों पछताना पड़ा ? प्रदेशी ! कुछ अर्थ के अभिलाषी, अर्थ की गवेषणा करने वाले, अर्थ के लोभी, अर्थ की कांक्षा और अर्थ की लिप्सा वाले पुरुष अर्थ-गवेषणा करने के निमित्त विपुल परिमाण में बिक्री करने योग्य पदार्थों और साथ में खाने-पीने के लिए पुष्कल पाथेय लेकर निर्जन, हिंसक प्राणीयों से व्याप्त और पार होने के लिए रास्ता न मिले, ऐसी एक बहुत बड़ी अटवी में जा पहुँचे ।

जब वे लोग उस निर्जन अटवी में कुछ आगे बढ़े तो किसी स्थान पर उन्होंने इधर-उधर सारयुक्त लोहे से व्याप्त लम्बी-चौड़ी और गहरी एक विशाल लोहे की खान देखी । वहाँ लोहा खूब बिखरा पड़ा था । उस खान को देखकर हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय होकर उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया और कहा, यह लोहा हमारे लिये इष्ट, प्रिय यावत् मनोज्ञ है, अतः देवानुप्रियो ! हमें इस लोहे के भार को बांध लेना चाहिए । इस विचार को एक दूसरे ने स्वीकार करके लोहे का भारा बांध लिया । अटवी में आगे चल दिए । तत्पश्चात् आगे चलते-चलते वे लोग जब उस निर्जन यावत् अटवी में एक स्थान पर पहुँचे तब उन्होंने सीसे से भरी हुई एक विशाल सीसे की खान देखी, यावत् एक दूसरे को बुलाकर कहा-हमें इस सीसे का संग्रह करना यावत् लाभदायक है । थोड़े से सीसे के बदले हम बहुत-सा लोहा ले सकते हैं । इसलिए हमें इस लोहे के भार को छोड़कर सीसे का पोटला बांध लेना योग्य है । ऐसा कहकर लोहे को छोड़कर सीसे के भार को बांध लिया । किन्तु उनमें से एक व्यक्ति लोहे को छोड़कर सीसे के भार को बांधने के लिए तैयार नहीं हुआ । तब दूसरे व्यक्तियों ने अपने उस साथी से कहा-देवानुप्रियो ! हमें लोहे की अपेक्षा इस सीसे का संग्रह करना अधिक अच्छा है, यावत् हम इस थोड़े से सीसे से बहुत

सा लोहा प्राप्त कर सकते हैं। अत एव देवानुप्रिय ! इस लोहे को छोड़कर सीसे का भार बांध लो।

तब उस व्यक्ति ने कहा-देवानुप्रियो ! मैं इस लोहे के भार को बहुत दूर से लादे चला आ रहा हूँ। मैंने इस लोहे को बहुत ही कसकर बांधा है। देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को अशिशिल बंधन से बांधा है। देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को अत्याधिक प्रगाढ़ बंधन से बांधा है। इसलिए मैं इस लोहे को छोड़कर सीसे के भार को नहीं बांध सकता हूँ। तब दूसरे साथियों ने उस व्यक्ति को अनुकूल-प्रतिकूल सभी तरह की आख्यापना से, प्रज्ञापना से समझाया। लेकिन जब वे उस पुरुष को समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुए तो अनुक्रम से आगे-आगे चलते गए और वहाँ-वहाँ पहुँचकर उन्होंने तांबे की, चाँदी की, सोने की, रत्नों की और हीरों की खानें देखीं एवं इनको जैसे-जैसे बहुमूल्य वस्तुएं मिलती गईं, वैसे-वैसे पहले-पहले के अल्प मूल्य वाले तांबे आदि को छोड़कर अधिक-अधिक मूल्य वाली वस्तुओं को बांधते गये। सभी खानों पर उन्होंने अपने उस दुराग्रही साथी को समझाया किन्तु उसके दुराग्रह को छुड़ाने में वे समर्थ नहीं हुए।

इसके बाद वे सभी व्यक्ति जहाँ अपना जनपद-देश था अपने-अपने नगर थे, वहाँ आए। उन्होंने हीरों को बेचा। उससे प्राप्त धन से अनेक दास-दासी, गाय, भैंस और भेड़ों को खरीदा, बड़े-बड़े आठ-आठ मंजिल के ऊंचे भवन बनवाए और इसके बाद स्नान, बलिकर्म आदि करके उन श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपरी भागों में बैठकर बजते हुए मृदंग आदि वाद्यों एवं उत्तम तरुणियों द्वारा की जा रही नृत्य-गान युक्त बत्तीस प्रकार की नाट्य लीलाओं को देखते तथा साथ ही इष्ट शब्द, स्पर्श यावत् व्यतीत करने लगे। वह लोहवाहक पुरुष भी लोहभार को लेकर अपने नगर में आया। उस लोहभार के लोहे को बेचा। किन्तु अल्प मूल्य वाला होने से उसे थोड़ा-सा धन मिला। उस पुरुष ने अपने साथियों को श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपर रहते हुए यावत् अपना समय बिताते हुए देखा। देखकर अपने आप से कहने लगा-अरे ! मैं अधन्य, पुण्यहीन, अकृतार्थ, शुभ लक्षणों से रहित, श्री-ही से वर्जित, हीनपुण्य चातुर्दशिक, दुरंत-प्रान्त लक्षण वाला कुलक्षणी हूँ। यदि उन मित्रों, ज्ञातिजनों और अपने हितैषियों की बात मान लेता तो आज मैं भी इसी तरह श्रेष्ठ प्रासादों में रहता हुआ यावत् अपना समय व्यतीत करता। इसी कारण हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि यदि तुम अपना दुराग्रह नहीं छोड़ोगे तो उस लोहभार को ढोने वाले दुराग्रही की तरह तुम्हें भी पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

सूत्र - ७६

इस प्रकार समझाये जाने पर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण को वन्दना की यावत् निवेदन किया-भदन्त ! मैं वैसा कुछ नहीं करूँगा जिससे उस लोहभारवाहक पुरुष की तरह मुझे पश्चात्ताप करना पड़े। आप देवानुप्रिय से केवलिप्रज्ञप्त धर्म सूनना चाहता हूँ। देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसा करो, परन्तु विलंब मत करो। इसके पश्चात् प्रदेशी की जिज्ञासा-वृत्ति देखकर केशी कुमारश्रमणने राजाप्रदेशी को धर्मकथा सूनाकर गृही धर्म का विस्तार से विवेचन किया। राजा गृहस्थधर्म स्वीकार करके सेयविया नगरी की ओर चलने को तत्पर हुआ

सूत्र - ७७

तब केशी कुमारश्रमण ने कहा-प्रदेशी ! जानते हो कितने प्रकार के आचार्य होते हैं ? प्रदेशी-हाँ भदन्त ! तीन आचार्य होते हैं-कलाचार्य, शिल्पाचार्य, धर्माचार्य। प्रदेशी ! जानते हो कि इन तीन आचार्यों में से किसकी कैसी विनयप्रतिपत्ति करनी चाहिए ? हाँ, भदन्त ! जानता हूँ। कलाचार्य और शिल्पाचार्य के शरीर पर चन्दनादि का लेप और तेल आदि का मर्दन करना चाहिए, उन्हें स्नान करना चाहिए, उनके सामने पुष्प आदि भेंट रूप में रखना चाहिए, उनके कपड़ों आदि को सुरभि गन्ध से सुगन्धित करना चाहिए, आभूषणों आदि से उन्हें अलंकृत करना चाहिए, आदरपूर्वक भोजन कराना चाहिए और आजीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देना चाहिए, एवं उनके लिए ऐसी आजीविका की व्यवस्था करनी चाहिए कि पुत्र-पौत्रादि परम्परा भी जिसका लाभ ले सके। धर्माचार्य के जहाँ भी दर्शन हों, वहीं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहिए, उनका सत्कार-सम्मान करना चाहिए और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप एवं ज्ञानरूप उनकी पर्युपासना करनी चाहिए तथा अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य

भोजन-पान से उन्हें प्रतिलाभित करना चाहिए, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या-संस्तारक आदि ग्रहण करने के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए । प्रदेशी ! इस प्रकार की विनयप्रतिपत्ति जानते हुए भी तुम अभी तक मेरे प्रति जो प्रतिकूल व्यवहार एवं प्रवृत्ति करते रहे, उसके लिए क्षमा माँगे बिना ही सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत हो रहे हो ?

प्रदेशी राजा ने यह निवेदन किया-हे भदन्त ! आपका कथन योग्य है किन्तु मेरा इस प्रकार यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प है कि अभी तक आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने जो प्रतिकूल यावत् व्यवहार किया है, उसके लिए आगामी कल, रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने, उत्पलों और कमनीय कमलों के उन्मीलित और विकसित होने, प्रभात के पांडुर होने, रक्तशोक, पलाशपुष्प, शुकमुख, गुंजाफल के अर्धभाग जैसे लाल, सरोवर में स्थित कमलिनीकुलों के विकासक सूर्य का उदय होने एवं जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्तःपुर-परिवार सहित आप देवानुप्रिय की वन्दना-नमस्कार करने और अवमानना रूप अपने अपराध की बारंबार विनयपूर्वक क्षमापना के लिए सेवा में उपस्थित होऊँ । ऐसा निवेदन कर वह जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया । दूसरे दिन जब रात्रि के प्रभात रूप में रूपान्तरित होने यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित दिनकर के प्रकाशित होने पर प्रदेशी राजा हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होता हुआ कोणिक राजा की तरह दर्शनार्थ नीकला । उसने अन्तःपुर-परिवार आदि के साथ पाँच प्रकार के अभिगमपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और यथाविधि विनयपूर्वक अपने प्रतिकूल आचरण के लिए बारंबार क्षमायाचना की ।

सूत्र - ७८

तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा, सूर्यकान्ता आदि रानियों और उस अति विशाल परिषद् को यावत् धर्मकथा सूनाई । इसके बाद प्रदेशी राजा धर्मदेशना सून कर और उसे हृदय में धारण करके अपने आसन से उठा एवं केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया । सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ । केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा-जैसे वनखण्ड अथवा नाट्यशाला अथवा इक्षुवाड अथवा खलवाड पूर्व में रमणीय होकर पश्चात् अरमणीय हो जाते हैं, उस प्रकार तुम पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय मत हो जाना । भदन्त ! यह कैसे कि वनखण्ड आदि पूर्व में रमणीय होकर बाद में अरमणीय हो जाते हैं ? प्रदेशी ! वनखण्ड जब तक हरे-भरे पत्तों, पुष्पों, फलों से सम्पन्न और अतिशय सुहावनी सघन छाया एवं हरियाली से व्याप्त होता है तब तक अपनी शोभा से अतीव-अतीव सुशोभित होता हुआ रमणीय लगता है । लेकिन वही वनखण्ड पत्तों, फूलों, फलों और नाममात्र की भी हरियाली नहीं रहने से हराभरा, देदीप्यमान न होकर कुरूप, भयावना दिखने लगता है तब सूखे वृक्ष की तरह छाल-पत्तों के जीर्ण-शीर्ण हो जाने, झर जाने, सड़ जाने, पीले और म्लान हो जाने से रमणीय नहीं रहता है । इसी प्रकार नाट्यशाला भी जब तक संगीत-गान होता रहता है, बाजे बजते रहते हैं, नृत्य होते रहते हैं, लोगों के हास्य से व्याप्त रहती है और विविध प्रकार की रमते होती रहती हैं तब तक रमणीय लगती है, किन्तु जब उसी नाट्यशाला में गीत नहीं गाये जा रहे हों यावत् क्रीड़ाएँ नहीं हो रही हों, तब वही नाट्यशाला असुहावनी हो जाती है ।

इसी तरह प्रदेशी ! जब तक इक्षुवाड में ईख कटती हो, टूटती हो, पेरी जाती हो, लोग उसका रस पीते हों, कोई उसे लेते-देते हों, तब तक वह इक्षुवाड रमणीय लगता है । लेकिन जब उसी इक्षुवाड में ईख न कटती हो आदि तब वही मन को अरमणीय, अनिष्टकर लगने लगती है । इसी प्रकार प्रदेशी ! जब तक खलवाड में धान्य के ढेर लगे रहते हैं, उड़ावनी होती रहती है, धान्य का मर्दन होता रहता है, तिल आदि पेरे जाते हैं, लोग एक साथ मिलकर भोजन खाते-पीते, देते-लेते हैं, तब तक वह रमणीय मालूम होता है, लेकिन जब धान्य के ढेर आदि नहीं रहते तब वही अरमणीय दिखने लगता है । इसीलिए हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि तुम पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय मत हो जाना, जैसे कि वनखण्ड आदि हो जाते हैं ।

तब प्रदेशी राजा ने निवेदन किया-भदन्त ! आप द्वारा दिये गये वनखण्ड यावत् खलवाड के उदाहरणों की

तरह में पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय नहीं बनूँगा । क्योंकि मैंने यह विचार किया है कि सेयविया नगरी आदि सात हजार ग्रामों के चार विभाग करूँगा । उनमें से एक भाग राज्य की व्यवस्था और रक्षण के लिए बल और वाहन के लिए दूँगा, एक भाग प्रजा के पालन हेतु कोठार में अन्न आदि के लिए रखूँगा, एक भाग अंतःपुर के निर्वाह और रक्षा के लिए दूँगा और शेष एक भाग से एक विशाल कूटाकार शाला बनवाऊँगा और फिर बहुत से पुरुषों को भोजन, वेतन और दैनिक मजदूरी पर नियुक्त कर प्रतिदिन विपुल मात्रा में अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चारों प्रकार का आहार बनवाकर अनेक श्रमणों, माहनों, भिक्षुओं, यात्रियों और पथिकों को देते हुए एवं शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि यावत् अपना जीवनयापन करूँगा, ऐसा कहकर जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया ।

सूत्र - ७९

तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने अगले दिन यावत् जाज्वल्यमान तेजसहित सूर्य के प्रकाशित होने पर सेयविया प्रभृति सात हजार ग्रामों के चार भाग किये । उनमें से एक भाग बल-वाहनों को दिया यावत् कूटाकारशाला का निर्माण कराया । उसमें बहुत से पुरुषों को नियुक्त कर यावत् भोजन बनवाकर बहुत से श्रमणों यावत् पथिकों को देते हुए अपना समय बिताने लगा ।

सूत्र - ८०

प्रदेशी राजा अब श्रमणोपासक हो गया और जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता होता हुआ धार्मिक आचार-विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा । जबसे वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुआ तब से राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोठार, पुर, अन्तःपुर और जनपद के प्रति भी उदासीन रहने लगा । राजा प्रदेशी को राज्य आदि के प्रति उदासीन देखकर सूर्यकान्ता रानी को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि-जब से राजा प्रदेशी श्रमणोपासक हुआ है, उसी दिन से राज्य, राष्ट्र, यावत् अन्तःपुर, जनपद और मुझसे विमुख हो गया है। अतः मुझे यही उचित है कि शस्त्रप्रयोग, अग्निप्रयोग, मंत्रप्रयोग अथवा विषप्रयोग द्वारा राजा प्रदेशी को मारकर और सूर्यकान्तकुमार को राज्य पर आसीन करके स्वयं राज्यलक्ष्मी का भोग करती हुई, प्रजा का पालन करती हुई आनन्दपूर्वक रहूँ । ऐसा विचार करके सूर्यकान्तकुमार को बुलाया, बुलाकर अपनी मनोभावना बताई-

हे पुत्र ! जब से प्रदेशी राजा ने श्रमणोपासक धर्म स्वीकार कर लिया है, तभी से राज्य यावत् अन्तःपुर, जनपद और मनुष्य संबंधी कामभोगों की ओर ध्यान देना बंद कर दिया है । इसलिए पुत्र ! यही श्रेयस्कर है कि शस्त्रप्रयोग आदि किसी-न-किसी उपाय से प्रदेशी राजा को मारकर स्वयं राज्यलक्ष्मी का भोग एवं प्रजा का पालन करते हुए अपना जीवन बीताओ । सूर्यकान्ता देवी के इस विचार को सूनकर सूर्यकान्तकुमार ने उसका आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया किन्तु शांत-मौन ही रहा ।

सूत्र - ८१

तब सूर्यकान्ता रानी को इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि सूर्यकान्त कुमार प्रदेशी राजा के सामने मेरे इस रहस्य को प्रकाशित कर दे । ऐसा सोचकर सूर्यकान्ता रानी प्रदेशी राजा को मारने के लिए उसके दोष रूप छिद्रों को, कुकृत्य रूप आन्तरिक मर्मों को, एकान्त में सेवित निषिद्ध आचरण रूप रहस्यों को, एकान्त निर्जन स्थानों को और अनुकूल अवसर रूप अन्तरो को जानने की ताक में रहने लगी । किसी एक दिन अनुकूल अवसर मिलने पर सूर्यकान्ता रानी ने प्रदेशी राजा को मारने के लिए अशन-पान आदि भोजन में तथा शरीर पर धारण करने योग्य सभी वस्त्रों, सूँघने योग्य सुगन्धित वस्तुओं, पुष्पमालाओं और आभूषणों में विषय डालकर विषैला कर दिया । इसके बाद जब वह प्रदेशी राजा स्नान यावत् मंगल प्रायश्चित्त कर भोजन करने के लिए सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठा तब वह विषमिश्रित घातक अशन आदि रूप आहार परोसा तथा विषमय वस्त्र पहनाए यावत् विषमय अलंकारों से उसको शृंगारित किया । तब उस विषमिले आहार को खाने से प्रदेशी राजा के शरीर में उत्कट, प्रचुर, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, पुरुष, निष्ठुर, रौद्र, दुःखद, विकट और दुस्सह

वेदना उत्पन्न हुई। विषम पित्तज्वर से सारे शरीर में जलन होने लगी।

तत्पश्चात् प्रदेशी राजा सूर्यकान्ता देवी के इस उत्पात को जानकर भी उसके प्रति मन में लेशमात्र भी द्वेष-रोष न करते हुए जहाँ पौषधशाला थी वहाँ आया। पौषधशाला की प्रमार्जना की, उच्चारप्रस्रवणभूमि का प्रति-लेखन किया। फिर दर्भ का सथारा बिछाया और उस पर आसीन होकर पूर्व दिशा की ओर मुख कर पर्यकासन से बैठकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा-अरिहंतों यावत् सिद्धगति को प्राप्त भगवंतों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो। यहाँ स्थित मैं वहाँ बिराजमान भगवान की वन्दना करता हूँ। वहाँ पर बिराजमान वे भगवन् यहाँ रहकर वन्दना करने वाले मुझे देखें। पहले भी मैंने केशी कुमारश्रमण के समक्ष स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया है। अब इस समय भी मैं उन्हीं भगवंतों की साक्षी से सम्पूर्ण प्राणातिपाति यावत् समस्त परिग्रह, क्रोध यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। अकरणीय समस्त कार्यों एवं मन-वचन-काय योग का प्रत्याख्यान करता हूँ और जीवनपर्यंत के लिए सभी अशन-पान आदि रूप चारों प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूँ।

परन्तु मुझे यह शरीर इष्ट है, मैंने यह ध्यान रखा है कि इसमें कोई रोग आदि उत्पन्न न हो परन्तु अब अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक के लिए इस शरीर का भी परित्याग करता हूँ। इस प्रकार के निश्चय के साथ पुनः आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक मरण समय के प्राप्त होने पर काल करके सौधर्मकल्प के सूर्याभ-विमान की उपपात सभा में सूर्याभदेव के रूप में उत्पन्न हुआ, इत्यादि।

'प्रदेशी राजा' के अधिकार का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

तत्काल उत्पन्न हुआ वह सूर्याभदेव पाँच पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषा-मनःपर्याप्ति। इस प्रकार से हे गौतम ! उस सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत किया है।

सूत्र - ८२

गौतम-भदन्त ! उस सूर्याभदेव की आयुष्यमर्यादा कितने काल की है ? गौतम ! चार पल्योपम की है। भगवन् ! आयुष्य पूर्ण होने, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर सूर्याभदेव उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो कुल आढ्य, दीप्त, विपुल बड़े कुटुम्ब परिवार वाले, बहुत से भवनों, शय्याओं, आसनों और यानवाहनों के स्वामी, बहुत से धन, सोने-चाँदी के अधिपति, अर्थोपार्जन के व्यापार-व्यवसाय में प्रवृत्त एवं दीनजनों को जिनके यहाँ से प्रचुर मात्रा में भोजनपान प्राप्त होता है, सेवा करने के लिए बहुत से दास-दासी रहते हैं, बहुसंख्यक गाय, भैंस, भेड़ आदि पशुधन है और जिनका बहुत से लोगों द्वारा भी पराभव नहीं किया जा सकता, ऐसे प्रसिद्ध कुलों में से किसी एक कुल में वह पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। तत्पश्चात् उस दारक के गर्भ में आने पर माता-पिता की धर्ममें दृढ़ प्रतिज्ञा-श्रद्धा होगी। बाद नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन बीतने पर दारक की माता सुकुमार हाथ-पैर वाले शुभ लक्षणों एवं परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों और शरीरवाले, सामुद्रिक शास्त्रमें बताये लक्षणों, तिल आदि व्यंजनों और गुणों से युक्त, माप, तोल और नाप में बराबर, सुजात, सर्वांगसुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कमनीय, प्रियदर्शन एवं सरूपवान् पुत्र को जन्म देगी

तब उस दारक के माता-पिता प्रथम दिवस स्थितिपतिता करेंगे। तीसरे दिन चन्द्र और सूर्यदर्शन सम्बन्धी क्रियाएं करेंगे। छठे दिन रात्रिजागरण करेंगे। बारहवें दिन जातकर्म सम्बन्धी अशुचि की निवृत्ति के लिए घर झाड़-बुहार और लीप-पोत कर शुद्ध करेंगे। घर की शुद्धि करने के बाद अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप विपुल भोजन-सामग्री बनवायेंगे और मित्रजनों, ज्ञातिजनों, निजजनों, स्वजन-सम्बन्धियों एवं दास-दासी आदि परिजनों, परिचितों को आमंत्रित करेंगे। इसके बाद स्नान, बलिकर्म, तिलक आदि कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त यावत् आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजनमंडप में श्रेष्ठ आसनों पर सुखपूर्वक बैठकर मित्रों यावत् परिजनों के साथ

विपुल अशनादि रूप भोजन का आस्वादन, विशेष रूप में आस्वादन करेंगे, उसका परिभोग करेंगे, एक दूसरे को परोसेंगे और भोजन करने के पश्चात् आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, परम शूचिभूत होकर उन मित्रों, ज्ञातिजनों यावत् परिजनों का विपुल वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों आदि से सत्कार-सम्मान करेंगे और फिर उन्हीं मित्रों यावत् परिजनों से कहेंगे-

देवानुप्रियो ! जब से यह दारक माता की कुक्षि में गर्भ रूप से आया था तभी से हमारी धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा-श्रद्धा हुई है, इसलिए हमारे इस बालक का 'दृढ़प्रतिज्ञ' यह नाम हो । इस तरह उस दारक के माता-पिता 'दृढ़प्रतिज्ञ' यह नामकरण करेंगे । इस प्रकार से उसके माता-पिता अनुक्रम से-स्थितिपतिता, चन्द्र-सूर्यदर्शन, धर्म जागरण, नामकरण, अन्नप्राशन, प्रतिवर्धापन, प्रचक्रमण, कर्णवेधन, संवत्सर प्रतिलेख और चूलोपनयन आदि तथा अन्य दूसरे भी बहुत से गर्भाधान, जन्मादि सम्बन्धी उत्सव भव्य समारोह के साथ प्रभावक रूप में करेंगे ।

सूत्र - ८३

उसके बाद वह दृढ़प्रतिज्ञ शिशु, क्षीरधात्री, मंडनधात्री, मज्जनधात्री, अंकधात्री और क्रीडापनधात्री-इन पाँच धायमाताओं की देखरेख में तथा इनके अतिरिक्त इंगित, चिन्तित, प्रार्थित को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेष को पहनने वाली, निपुण, कुशल-प्रवीण एवं प्रशिक्षित ऐसी कुब्जा, चिलातिका, वामनी, वडभी, बर्बरी, बकुशी, योनकी, पल्लविका, ईसिनिका, वारुणिका, लासिका, लाकुसिका, द्रावड़ी, सिंहली, पुलिंदी, आरबी, पक्वणी, बहली, मुरण्डी, शबरी, (शबर देश की), पारसी (पारस देश की) आदि अनेक देश-विदेशों की तरुण दासियों एवं वर्षधरों, कंचुकियों और महत्तरकों के समुदाय से परिवेष्टित होता हुआ, हाथों ही हाथों में लिया जाता, दुलराया जाता, एक से दूसरी गोद में लिया जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, क्रीडादि द्वारा लालन-पालन किया जाता, लाड़ किया जाता, लोरियाँ सूनाया जाता, चुम्बन किया जाता और रमणीय मणिजटित प्रांगण में चलाया जाता हुआ व्याघातरहित गिरि-गुफा में स्थित श्रेष्ठ चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक दिनोंदिन परिवर्धित होगा ।

तत्पश्चात् दृढ़प्रतिज्ञबालक साधिक आठ वर्ष होने पर कलाशिक्षणके लिए माता-पिता शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्तमें स्नान, बलिकर्म, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कराके और अलंकारों से विभूषित कर ऋद्धि-वैभव, सत्कार, समारोहपूर्वक कलाचार्य पास ले जाएंगे । तब कलाचार्य उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को गणित जिनमें प्रधान है ऐसी लेखादि शकुनिरुत तक ७२ कला सूत्र से, अर्थ से, ग्रन्थ से तथा प्रयोग से सिद्ध करायेंगे, अभ्यास करायेंगे

१. लेखन, २. गणित, ३. रूप सजाना, ४. नाट्य, ५. संगीत, ६. वाद्य, ७. स्वर, ८. ढोल, ९. सूर-ताल, १०. द्यूत, ११. वाद-विवाद, १२. पासा, १३. चौपड़, १४. काव्य, १५. जल और मिट्टी को मिलाकर वस्तु निर्माण करना, १६. अन्न, १७. पानी, १८. वस्त्र, १९. विलोपनविधि, २०. शय्या, २१. छन्दो, २२. पहेलियाँ, २३. मागधिक, २४. निद्रायिका, २५. प्राकृतभाषा, २६. गीति-छंद, २७. श्लोक, २८. हिरण्ययुक्ति, २९. स्वर्णयुक्ति, ३०. आभूषण, ३१. तरुणीप्रतिकर्म, ३२. स्त्रीलक्षण, ३३. पुरुषलक्षण, ३४. अश्वलक्षण, ३५. हाथीलक्षण, ३६. मुगालक्षण, ३७. छत्रलक्षण, ३८. चक्र-लक्षण, ३९. दंड-लक्षण, ४०. असिलक्षण, ४१. मणि-लक्षण, ४२. काकणी-लक्षण, ४३. वास्तुविद्या, ४४. नगर बसाना, ४५. स्कन्धावार, ४६. माप-नाप, ४७. प्रतिचार, ४८. व्यूह, ४९. चक्रव्यूह, ५०. गरुड़व्यूह, ५१. शकटव्यूह, ५२. युद्ध, ५३. नियुद्ध, ५४. युद्ध-युद्ध, ५५. अट्टि-युद्ध, ५६. मुषियुद्ध, ५७. बाहु-युद्ध, ५८. लतायुद्ध, ५९. इष्वस्त्र, ६०. तलवार, ६१. धनुर्वेद, ६२. चाँदीपाक, ६३. सोनापाक, ६४. मणियोंनिर्माण, ६५. धातुपाक, ६६. सूत्रलेख, ६७. वृत्तखेल, ६८. नालिकाखेल, ६९. पत्रछेदन, ७०. पार्वतीयभूमिछेदन, ७१. मूर्छित, ७२. शकुनज्ञान करना । ,..... तत्पश्चात् कलाचार्य उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से, ग्रन्थ एवं प्रयोग से सिखला कर, सिद्ध कराकर माता-पिता के पास ले जायेंगे । तब उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक के माता-पिता विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों से कलाचार्य को सत्कार, सम्मान करेंगे और फिर जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देंगे । जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर बिदा करेंगे ।

सूत्र - ८४

इसके बाद वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक बालभाव से मुक्त हो परिपक्व विज्ञानयुक्त, युवावस्थासंपन्न हो जाएगा । बहत्तर कलाओं में पंडित होगा, बाल्यावस्था के कारण मनुष्य के जो नौ अंग-जागृत हो जाएंगे । अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो जाएगा, वह गीत का अनुरागी, गीत और नृत्य में कुशल हो जाएगा । अपने सुन्दर वेष से शृंगार का आगार-जैसा प्रतीत होगा । उसकी चाल, हास्य, भाषण, शारीरिक और नेत्रों की चेष्टाएं आदि सभी संगत होंगी । पारस्परिक आलाप-संलाप एवं व्यवहार में निपुण-कुशल होगा । अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध करने एवं अपनी भुजाओं से विपक्षी का मर्दन करने में सक्षम एवं भोग भोगने की सामर्थ्य से संपन्न हो जाएगा तथा साहसी ऐसा हो जाएगा । भयभीत नहीं होगा । तब उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को बाल्यावस्था से मुक्त यावत् विकाल-चारी जानकर माता-पिता विपुल अन्नभोगों, पानभोगों, प्रासादभोगों, वस्त्रभोगों और शय्याभोगों के योग्य भोगों को भोगने के लिए आमंत्रित करेंगे ।

तब वह दृढ़प्रतिज्ञ दारक उन विपुल अन्न रूप भोग्य पदार्थों यावत् शयन रूप भोग्य पदार्थों में आसक्त नहीं होगा, गृद्ध नहीं होगा, मूर्च्छित नहीं होगा और अनुरक्त नहीं होगा । जैसे कि नीलकमल, पद्मकमल यावत् सहस्र-पत्रकमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं और जल में वृद्धिगत होते हैं, फिर भी पंकरज और जलरज से लिप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह दृढ़प्रतिज्ञ दारक भी कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों के बीच लालन-पालन किये जाने पर भी उन कामभोगों में एवं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी-स्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों में अनुरक्त नहीं होगा । किन्तु वह तथारूप स्थविरों से केवलबोधि प्राप्त करेगा एवं मुण्डित होकर, अनगार-प्रव्रज्या अंगीकार करेगा । ईर्यासमिति आदि अनगारधर्म पालन करते सुहुत हुताशन की तरह अपने तपस्तेज से चमकेगा, दीप्त मान होगा ।

इसके हाथ ही अनुत्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अप्रतिबद्ध विहार, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति सर्व संयम एवं निर्वाण की प्राप्ति जिसका फल है ऐसे तपोमार्ग से आत्मा को भावित करते हुए भगवान् (दृढ़प्रतिज्ञ) को अनन्त, अनुत्तर, सकल, परिपूर्ण, निरावरण, निर्व्याघात, अप्रतिहत, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होगा । तब वे दृढ़प्रतिज्ञ भगवान् अर्हत्, जिन, केवली हो जाएंगे । जिसमें देव, मनुष्य तथा असुर आदि रहते हैं ऐसे लोक की समस्त पर्यायों को वे जानेंगे । आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, तर्क, क्रिया, मनोभावों, क्षयप्राप्त, प्रतिसेवित, आविष्कर्म, रहःकर्म आदि, प्रकट और गुप्त रूप से होने वाले उस-उस मन, वचन और कायभोग में विद्यमान लोकवर्ती सभी जीवों के सर्वभावों को जानते-देखते हुए विचरण करेंगे ।

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञकेवली इस प्रकार के विहार से विचरण करते अनेकवर्षों तक केवलिपर्यायका पालन कर, आयु के अंत को जानकर अपने अनेक भक्तों-भोजनों का प्रत्याख्यान व त्याग करेंगे, अनशन द्वारा बहुत से भोजनों का छेदन करेंगे, जिस साध्यसिद्धि के लिए नग्नभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यधारण, स्नान का त्याग, दंतधावन त्याग, पादुका त्याग, भूमि पर शयन करना, काष्ठासन पर सोना, भिक्षार्थ परगृहप्रवेश, लाभ-अलाभ में सम रहना, मान-अपमान सहना, दूसरों के द्वारा की जाने वाली हीलना, निन्दा, खिंसना, तर्जना, ताड़ना, गर्हा एवं अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार के २२ परीषह, उपसर्ग तथा लोकापवाद सहन किए जाते हैं, मौक्षसाधना करके चरम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध हो जाएंगे, मुक्त हो जाएंगे, सकल कर्ममल का क्षय और समस्त दुःखों का अंत करेंगे

सूत्र - ८५

गौतमस्वामी ने कहा-भगवन् ! वह ऐसा ही है जैसा आपने प्रतिपादन किया है, इस प्रकार कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया । संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरणे लगे । भय विजेता भगवान् को नमस्कार हो । भगवती श्रुतदेवता को नमस्कार हो । प्रज्ञप्ति भगवती को नमस्कार हो । अर्हत् भगवान् पार्श्वनाथ को नमस्कार हो । प्रदेशी राजा के प्रश्नों के प्रदर्शक को नमस्कार हो ।

१३ राजप्रश्रीय-उपांगसूत्र-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्यपाद् श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुड्ढ्यो नमः

१३

राजप्रश्निय आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

वेब साईट:- (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ईमेल ऐड्रेस:- jainmunideepratnasagar@gmail.com मोबाईल 09825967397